पावन-मन

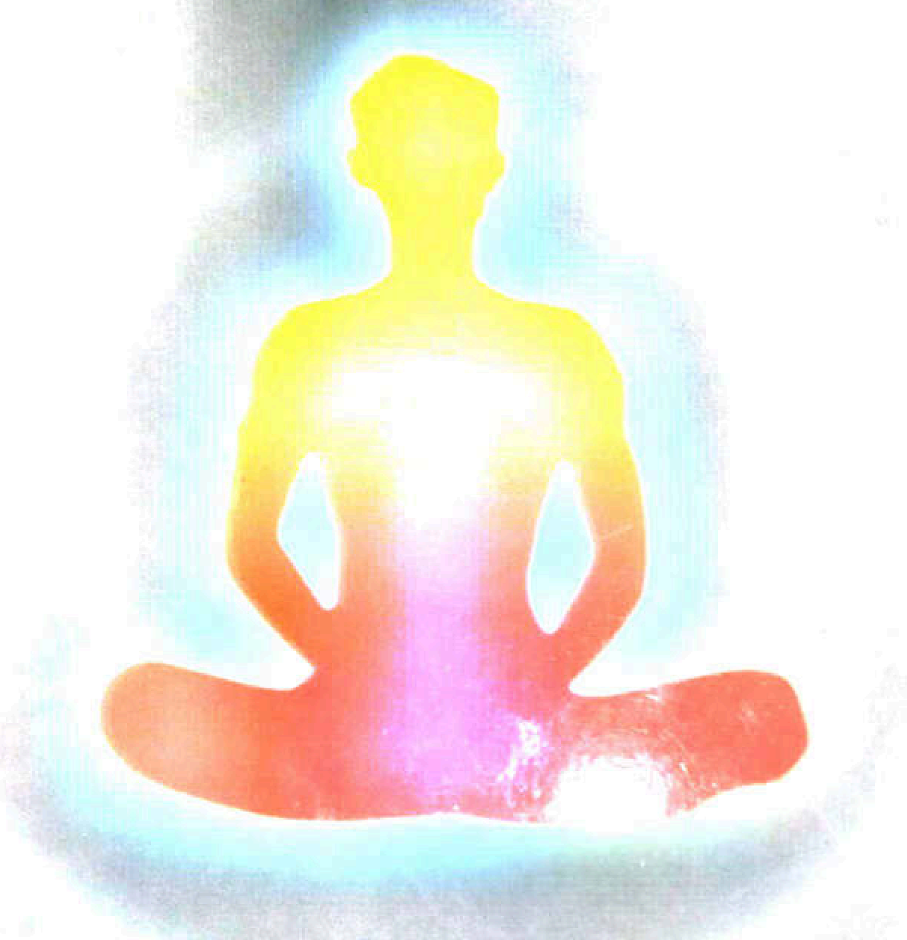

सामाजिक पदाधिकारी/ट्रस्टी/न्यासी की (योग्यता) अर्हतायें -

1. वीतरागी देव-गुरु-धर्म का श्रद्धानी। उनकी अवमानना होने पर शांतिपूर्ण ढंग से अस्वीकारना। न मानने पर स्वयं हट जाना।
2. दैनिक (निजी) स्वाध्यायी।
3. भारतीय संस्कृति व अनेकांतवाद का पोषक।
4. अष्ट मूलगुणों का धारी। सप्त व्यसन का त्यागी।
5. लोक निंद्य कार्य (निजी जीवन में न हों) व ऐसे कार्यक्रमों में भी शामिल नहीं होंवे।
6. निजी व्यवस्थाओं/सुविधाओं पर सामाजिक हित में आने वाले धन का उपयोग निषिद्ध।
7. PHYSICALLY (फिजीकल) सेवाओं में भी सामर्थ्यवान।
8. सत्य भी शांतिपूर्ण तरीके से दृढता से रखना। अधिकार की लड़ाई नहीं लड़ना। परिस्थिति बनने पर योग्य व्यक्ति को अधिकार दे देना।
9. आने वाले सुझाव या नवीन योजनाओं पर आगम के परिपेक्ष्य में विचार कर ही लागू करना।
10. भविष्य में परिवारवाद का मोह न रखकर, उपरोक्त आधार से निष्पक्ष चयन करें। स्वेच्छा से निवृत्ति लेकर साधना के पथिक बनें।

पावन-मन

(एकांकी संग्रह)

श्रीमती रूपवती 'किरण'

प्रथम संस्करण : 1,000 प्रतियाँ, सन् 1989, एटा (उ.प्र.)
द्वितीय संस्करण : 3,000 प्रतियाँ, सितम्बर 2018
तृतीय संस्करण : 2,000 प्रतियाँ, 24 मई 2023
(श्री श्रुत पंचमी पर्व के अवसर पर)

सहयोगी :-

1. स्व. श्रीमती रूपवती जी 'किरण' ध.प. श्री कोमलचन्द जी जैन की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री नरेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर
2. श्रीमती जयश्री-श्री विश्वलोचन जैनी, नागपुर
3. श्रीमती वीरमती जैन, अमायन
4. श्री मयंक जैन, मोहित जैन, शालीमार एक्सटेंशन, अलवर
5. श्रीमती स्वाति जैन ध.प. श्री पंकज जैन, विदिशा

प्रकाशक :
श्री वर्द्धमान न्यास
(पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.)-477227
मो. : 09826225580

न्यौछावर : 30/- रुपये

Pawan-Man
By. Smt. Roopvati 'Kiran', Jabalpur
Price : 30.00

प्रकाशकीय

हमारा **मन पावन** हो, निर्विकारी हो, हमारा शील निर्दोष हो और शील की रक्षा में सदैव सावधान रहें। कर्त्तव्य पालन में हमें आत्मसन्तोष हो, वैभव पद-प्रतिष्ठा को पाकर भी हम निस्पृही बने रहें।

धन आदि के चक्कर में हम अंधविश्वासों में न फँसें। पुण्य और पुरुषार्थ पर भरोसा रखें। विवेक और उदारता हमारे जीवन में सहज ही रहे। अंतरंग में नाम, यश आदि की चाह न हो।

सज्जनों की गंभीरता पहिचाने, हुण्डावसर्पिणी काल है, पग-पग पर धोखा देने वाले, छल-बल से कार्य सिद्धि में निपुण, हितैषी से दिखने वाले विकृत इंसान आस-पास चारों ओर बहुतायत की संख्या में मौजूद हैं...। उनसे निरपेक्ष रहकर अपनी कार्य सिद्धि में ही अपने उपयोग को लगावें।

हम सच्चे अर्थों में मानव बनें और साधक होकर साध्य को प्राप्त करें, इसी पवित्र भावना से **श्रीमती रूपवती 'किरण'** विरचित '**पावन-मन**' का प्रकाशन करते हुए हम सभी ट्रस्टीगण हर्षित हैं।

पक्ष व्यामोह से परे लेखिका की लेखनी सत्पथ पर बढ़ने का संदेश दे रही है। समाज में भी इस पुस्तक को सभी की स्वीकृति मिली, अतएव पुन:प्रकाशन आपके हाथों में है।

अपने सभी प्रकार के सहयोगियों का हार्दिक आभार मानते हैं। सभी पढ़ें, पढ़ावें और योग्य आचरण करें।

अखिल जैन
मंत्री, श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड) म.प्र.

अब लहर से खेलना है

हम बहुत बैठे किनारे अब लहर से खेलना है!

बहुत हास विलास देखे, व्यर्थ बहु जीवन गँवाये,
मधुर सुख की आशा में मणि फेंक कंकर ही उठाये।
प्यास से खोई तड़पते चिन्तना की शांत रातें।।
नित्य की करते रहे हम दम्भमय उद्भ्रान्त बातें।
छोड़ मृगतृष्णा, लहरती लहर से अब खेलना है।।

हम चलें उस पार समता की जहाँ किरणें बिखरतं
विश्व मैत्री की सुपावन भावनाएँ है निखरतं
यहाँ तो फैली विषैले स्वार्थ की कड़वी घुटन है
साँस अन्तिम ले रही अब ओढ़ मानवता कफन है
तीर पर रोये बहुत, अठखेलियाँ अब खेलना है

हम स्वयं हैं नाव-नाविक, हम भँवर, मँझधार भी हम,
हो उठे पुरुषार्थ सक्रिय, तीर हम, पतवार भी हम।
है भुजाओं में अतुलबल, कोटि सागर पार कर लें।।
निमिष भर में वासना के दुर्ग को भी क्षार कर दें।
हम अभय, निर्द्वन्द्व चल दें लिये अन्तः प्रेरणा है।।

विषय-सूची

क्र.	नाटक	पृष्ठ सं.
1.	पावन-मन	5
2.	चक्कर	30
3.	स्वाभिमान	53
4.	अपरिचित	81
5.	अब न चलेगी चतुराई	100

पावन-मन

पात्रानुक्रमणिका :

नन्दिवर्द्धन	- नवविवाहित युवक
सुरबाला	- नन्दिवर्द्धन की पत्नी
श्रीमाली	- सुरबाला पर आसक्त युवक
सुलहराज	- भिल्लों की प्रधान
सोमिला	- नन्दिवर्द्धन की माँ
पुण्य शर्मा	- नन्दिवर्द्धन के पिता

सपेरा चंपक, वृद्धा एवं जनसमूह

दृश्य-प्रथम

सयम- रात्रि प्रथम पहर

स्थान - वन में पर्णकुटी

(रत्न संचयपुर के निकट वन में पर्णकुटी है। लघु दीपक टिम-टिमाता रहा है। एक नवयुवती धरती पर मूर्छित पड़ी है। निकट वैश्य पुत्र श्रीमाली प्रसन्न मन बैठा है। आज उसकी मनोभिलाषा पूर्ण हुई है। सुरबाला उसे मिल गई है। रात्रि का प्रथम पहर समाप्त होने को है। भिल्ल-प्रमुख सुलहराज आता है)

श्रीमाली- (हर्षपूर्वक स्वागत करते हुए) आओ सुलहराज! रात्रि को आने का कष्ट क्यों किया ?

सुलहराज- आप मेरे अतिथि हैं श्रीमाली! आपकी कुशल क्षेम का ध्यान रखना मेरा कर्त्तव्य है।

श्रीमाली- मैं आपके उपकार को कभी विस्मृत नहीं कर सकता सुलहराज! आपने मेरी मनोकामना पूर्ण की है।

सुलहराज - श्रीमाली! मैं तुझसे वचनबद्ध था, तदनुसार लूट में मिली यह सुन्दरी तुम्हें दे दी वरन् हम भी पुरुष हैं। हमें भी.... ।

श्रीमाली- जानता हूँ भिल्लराज! मैं आपका चिर ऋणी रहूँगा।

सुलहराज- श्रीमाली तुमने भी हमारी सहायता की है। तुम्हारी योजना, तुम्हारा सुझाव था। तुम्हारे ही नेतृत्व में हमें मार्गदर्शन मिला वरन् अपने वन की सीमा लाँघकर नगर लूटने की हमने कल्पना भी नहीं की थी। सफलता का श्रेय तुम्हीं को है।

श्रीमाली- शासकीय अधिकारियों को दक्षिणा स्वरूप प्राथमिक भेंट चढ़ा दो तो कार्यसिद्धि निर्विघ्न हो जाती है।

सुलहराज- उन तक पहुँच सबकी नहीं होती श्रीमाली!

श्रीमाली- आप यह क्यों भूलते हैं कि (उँगलियों से संकेत

करते हुए) स्वर्ण मुद्राओं की वैसाखियों[1] के आश्रय से कहीं भी पहुँचा जा सकता है।

सुलहराज- सत्य कह रहे हो श्रीमाली! क्या नगरों में ऐसा भी होता है ? जय भ्रष्टाचार!

(सुलहराज के सेवक का एक बड़ी मंजूषा लिए प्रवेश। वह मंजूषा सुलहराज को देता है)

श्रीमाली- ये क्या है ?

सुलहराज- हमारी ओर से तुच्छ भेंट है श्रीमाली! स्वीकार करो।

श्रीमाली- आप केवल इस युवती को देने के लिए वचनबद्ध थे। वह आपने दे ही दी। इस द्रव्य की क्या आवश्यकता ?

सुलहराज- इसमें तुम्हारा भी भाग है श्रीमाली! न्यायानुसार तुम भी इस सम्पत्ति के अधिकारी हो। तुम्हारे ही कारण आशातीत सम्पत्ति प्राप्त हुई है।

श्रीमाली- यह आपकी उदारता है किन्तु.....

सुलहराज- संकोच की आवश्यकता नहीं। आप इस सुन्दरी के साथ नवीन गृहस्थी बसायेंगे। आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति यह स्वर्ण करेगा। तभी तुम्हारी प्रेयसी भी प्रसन्न रहेगी (विनोद करते हुए हँसते हैं)

श्रीमाली- (हँसकर) अब आप मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं।

सुलहराज- वृद्धजनों को अपने अनुभव का लाभ युवकों में

1. रिश्वत

वितरित करना ही चाहिए। कभी गाड़ी नाव पर और कभी नाव गाड़ी पर।

आप निःसंकोच इस सम्पत्ति को स्वीकार करें श्रीमाली! एक बात बता दूँ मैं, हम लोग लुटेरे अवश्य हैं पर अविश्वासी नहीं। जो भी मिलता है सब मिल बाँट कर खाते हैं।

श्रीमाली- (आश्चर्य भरे स्वर में) अच्छा!

सुलहराज- वितरण की अव्यवस्था मुझे तनिक भी सहन नहीं है, न ही वह उचित है। (युवती की ओर संकेत कर) ये क्या ऐसी ही मूर्छित है।

श्रीमाली- लगभग मूर्छा टूटी भी तो भोजन नहीं किया।

सुलहराज- तो क्या तुम पूर्व परिचित प्रेमी नहीं हो ?

श्रीमाली - परिचित हैं, प्रेमी नहीं। आपसे क्या छिपाऊँ ?

सुलहराज- मुझे अपना हितैषी समझो, मेरे द्वारा कदापि तुम्हारा अनिष्ट संभव नहीं ।

श्रीमाल- मुझे विश्वास है। यथार्थ बात यह है कि इस कन्या से विवाह करने की अभिलाषा थी किन्तु चर्चा करने से पूर्व ही यह अन्य की वाग्दत्ता हो चुकी थी।

सुलहराज- तुम्हारे माता-पिता ने प्रयत्न नहीं किया ?

श्रीमाली- वे इसलिए मौन हो गये कि वाग्दत्ता कन्या अन्य गृह

की वधू हो चुकी है। मेरी इच्छा को उन्होंने असंगत, दुराग्रह कहकर टाल दिया।

सुलहराज- संतान की प्रसन्नता के अर्थ तो माता-पिता प्राणों का विसर्जन कर देते हैं। संभव है अन्य संतान पर अधिक ममत्व हो।

श्रीमाली- मैं अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ सुलहराज। पर हमारी जातीय संस्कृति ही कुछ ऐसी निराली है कि उसमें सर्वोपरि स्थान नैतिकता को है, पुत्र की ममता को नहीं, नैतिकता की आँच में तपे हुए परिवार समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

सुलहराज- बलिहारी है तुम्हारी नैतिकता की।

श्रीमाली- नैतिकता की निर्मम वेदी पर मुझे अपनी अभिलाषाओं का हनन करना स्वीकार नहीं था।

सुलहराज- क्यों करे ? हम पुरुष हैं, भोग भोगने का हमें प्रकृति प्रदत्त अधिकार है। जहाँ हमारी इच्छाओं का दमन होता हो उस संस्कृति से क्या लाभ ? खाओ, पियो, आनन्द करो।

श्रीमाली- और क्या ? छोटा-सा जीवन, उसी में अनेक नियमों के बन्धन, मुझे तनिक भी रुचिकर नहीं।

सुलहराज- अच्छा! यह बताओ यह युवती उठी, भोजन किया

या नहीं ?

श्रीमाली- नहीं रोती रही है और आज निराहार है।

सुलहराज- सुघनी सुँघा दो तो मूर्च्छा दूर हो जाएगी। (शीशी देते हुए)

श्रीमाली- इसकी आवश्यकता नहीं है। अब तो भूख के कारण शिथिलता अधिक लग रही है।

सुलहराज- फिर भी रख लो, कदाचित् प्रयोग में आ जाए। रात्रि अधिक हो गई है। मैं चलूँ, तुम विश्राम करो। चिन्ता न करना, यहाँ तुम पूर्णत: सुरक्षित हो। युवती भी शनै:- शनै: आज्ञाकारिणी हो जायगी।

श्रीमाली- आप आराम करें।

सुलहराज - सुनो श्रीमाली! एक उपाय है। हमारा गुरु ओझा है, वह झाड़ फूँककर भस्म देता है, वह भस्म वशीकरण का काम करती है। कहो तो अभी ले आऊँ।

श्रीमाली- नहीं, नहीं! वह इसके केश खींचेगा और भी क्या-क्या कष्ट देगा। अन्य पुरुष के स्पर्श से यह और बिफर जायगी।

सुलहराज- अच्छा, मैं उसे समझाकर ले आऊँगा। तुम नगर निवासी हो न, हमारे उपाय, उपचार क्या जानो। मैं शीघ्र ही आता हूँ।

(सुलहराज का प्रस्थान। सुरबाला अर्द्धमूर्छित-सी

उन दोनों के वार्तालाप को सुन रही थी। दुष्टों के चुंगल से मेरा कैसे उद्धार होगा ? यह सोचकर वह पुन: मूर्छित हो जाती है। श्रीमाली निकट जाकर उसे जगाने का प्रयत्न करता है। वह सचेत हो उठकर बैठ जाती है)

सुरबाला- (दु:ख एवं क्रोध मिश्रित स्वर में) छोड़ दो, मुझे यहाँ क्यों लाये ?

श्रीमाली- बहुत भोली हो सुरबाला! नारी को एकांत में लाने का एक ही प्रयोजन होता है कि मैं तुम्हें वरण करना चाहता हूँ ?

सुरबाला- छि: तुम्हें लज्जा नहीं आती ऐसा घृणित प्रस्ताव रखते ? कौन हो तुम ?

श्रीमाली- मैं तुम्हारे सौंदर्य का प्यासा श्रीमाली हूँ।

सुरबाला- ओह! श्रीमाली! वही तो नहीं, जिसके पिता विवाह का प्रस्ताव लेकर मेरे पिता के समीप आये थे ?

श्रीमाली- (रोष में) और तुम्हारे पिता ने अमान्य कर दिया था।

सुरबाला- उचित ही था। अब मेरा सम्बन्ध रत्नसंचयपुर निश्चित कर फलदान हो चुका तब अन्यत्र कैसे किया जा सकता था ?

श्रीमाली- परन्तु मैंने तुम्हें हृदय से वरण कर लिया, मुझे कहाँ चैन थी ?

सुरबाला– तो क्या इसीलिए तुमने मेरे परिवार को मर्मान्तक पीड़ा दी, अनेक परिवारों को लूटा ? उन्हें धन-जन-विहीन कर दिया ?

श्रीमाली– यह मेरी विवशता थी प्रिये ! तुम्हारे प्रति तीव्र अनुराग ने ही मुझे इस क्रूर-कर्म करने की प्रेरणा दी।

सुरबाला– यह अनुराग नहीं, वासना है जो अंधी और विवेकहीन होती है।

श्रीमाली – तुम्हारा कथन यथार्थ है पर मैं क्रूर नहीं हूँ। मुझे इस प्रकार न ठुकराओ सुरबाला ! मैंने भिल्लों को केवल युक्ति बतलाई और प्रतिदान में तुम्हें पाया है। मुझे क्षमा करो सुरबाला !

सुरबाला– मेरी सुख-शांति नष्ट करके परिवार से बिछोह कराकर अब क्षमा याचना करते हो।

श्रीमाली– मैं वचन देता हूँ कि तुम्हें इससे अधिक सुख से रखूँगा। (मंजूषा की ओर संकेत कर) देखो यह बृहद् राशि।

सुरबाला– तुम भूलते हो श्रीमाली ! पंकज की शोभा पंक के साथ रहने पर ही है, स्वर्ण पात्र में नहीं। वह वहाँ सुरभि नहीं बिखेरेगा किन्तु असमय में नष्ट हो जायगा।

श्रीमाली– (किंचित् कठोरता से) मुझे तुम्हारा उपदेश नहीं,

तुम्हारी स्वीकृति, तुम्हारा समर्पण चाहिए। मैं एक अहोरात्रि पर्यन्त समय देता हूँ। तुम अपने हिताहित का विचार कर सकती हो।

सुलहराज– (प्रवेश कर, मंद स्वर में) श्रीमाली ! हमारे गुरु ओझा अस्वस्थ हैं, वे प्रातः आयेंगे। उन्होंने यह भस्म दी है। इसके चारों ओर बिखेरने से यह आज्ञाकारी सेवक की भाँति तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगी। ये वशीकरण भस्म है। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी, विश्वास रखो।

(सुलहराज चला जाता है। सुरबाला सुन लेती है)

श्रीमाली – सुरबाला ! मैं दो दिन का थका हूँ। मुझे निद्रा आ रही है। तुम भी विश्राम करो। पर सावधान ! भागने का प्रयत्न मत करना। घने वन में भिल्लों का कड़ा प्रतिबन्ध है। (श्रीमाली सुरबाला के चारों ओर भस्म छिड़क देता है)

सुरबाला– ये क्या कर रहे हो ?

श्रीमाली – तुम्हारी सुरक्षा का प्रबन्ध कर रहा हूँ ताकि तुम्हें किसी प्रकार का भय न सतावे।

(श्रीमाली भी धरती पर साधारण वस्त्र पर सो जाता है)

सुरबाला– (स्वगत) हे प्रभू ! अब क्या होगा ? कोई मा

वितरित करना ही चाहिए। कभी गाड़ी नाव पर और कभी नाव गाड़ी पर।

आप निःसंकोच इस सम्पत्ति को स्वीकार करें श्रीमाली! एक बात बता दूँ मैं, हम लोग लुटेरे अवश्य हैं पर अविश्वासी नहीं। जो भी मिलता है सब मिल बाँट कर खाते हैं।

श्रीमाली- (आश्चर्य भरे स्वर में) अच्छा!

सुलहराज- वितरण की अव्यवस्था मुझे तनिक भी सहन नहीं है, न ही वह उचित है। (युवती की ओर संकेत कर) ये क्या ऐसी ही मूर्छित है।

श्रीमाली- लगभग मूर्छा टूटी भी तो भोजन नहीं किया।

सुलहराज- तो क्या तुम पूर्व परिचित प्रेमी नहीं हो?

श्रीमाली - परिचित हैं, प्रेमी नहीं। आपसे क्या छिपाऊँ?

सुलहराज- मुझे अपना हितैषी समझो, मेरे द्वारा कदापि तुम्हारा अनिष्ट संभव नहीं।

श्रीमाल- मुझे विश्वास है। यथार्थ बात यह है कि इस कन्या से विवाह करने की अभिलाषा थी किन्तु चर्चा करने से पूर्व ही यह अन्य की वाग्दत्ता हो चुकी थी।

सुलहराज- तुम्हारे माता-पिता ने प्रयत्न नहीं किया?

श्रीमाली- वे इसलिए मौन हो गये कि वाग्दत्ता कन्या अन्य गृह

की वधू हो चुकी है। मेरी इच्छा को उन्होंने असंगत, दुराग्रह कहकर टाल दिया।

सुलहराज- संतान की प्रसन्नता के अर्थ तो माता-पिता प्राणों का विसर्जन कर देते हैं। संभव है अन्य संतान पर अधिक ममत्व हो।

श्रीमाली- मैं अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ सुलहराज। पर हमारी जातीय संस्कृति ही कुछ ऐसी निराली है कि उसमें सर्वोपरि स्थान नैतिकता को है, पुत्र की ममता को नहीं, नैतिकता की आँच में तपे हुए परिवार समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

सुलहराज- बलिहारी है तुम्हारी नैतिकता की।

श्रीमाली- नैतिकता की निर्मम वेदी पर मुझे अपनी अभिलाषाओं का हनन करना स्वीकार नहीं था।

सुलहराज- क्यों करे? हम पुरुष हैं, भोग भोगने का हमें प्रकृति प्रदत्त अधिकार है। जहाँ हमारी इच्छाओं का दमन होता हो उस संस्कृति से क्या लाभ? खाओ, पियो, आनन्द करो।

श्रीमाली- और क्या? छोटा-सा जीवन, उसी में अनेक नियमों के बन्धन, मुझे तनिक भी रुचिकर नहीं।

सुलहराज- अच्छा! यह बताओ यह युवती उठी, भोजन किया

या नहीं ?

श्रीमाली– नहीं रोती रही है और आज निराहार है।

सुलहराज– सुघनी सुँघा दो तो मूर्च्छा दूर हो जाएगी। (शीशी देते हुए)

श्रीमाली– इसकी आवश्यकता नहीं है। अब तो भूख के कारण शिथिलता अधिक लग रही है।

सुलहराज– फिर भी रख लो, कदाचित् प्रयोग में आ जाए। रात्रि अधिक हो गई है। मैं चलूँ, तुम विश्राम करो। चिन्ता न करना, यहाँ तुम पूर्णतः सुरक्षित हो। युवती भी शनैः- शनैः आज्ञाकारिणी हो जायगी।

श्रीमाली– आप आराम करें।

सुलहराज – सुनो श्रीमाली! एक उपाय है। हमारा गुरु ओझा है, वह झाड़ फूँककर भस्म देता है, वह भस्म वशीकरण का काम करती है। कहो तो अभी ले आऊँ।

श्रीमाली– नहीं, नहीं! वह इसके केश खींचेगा और भी क्या-क्या कष्ट देगा। अन्य पुरुष के स्पर्श से यह और बिफर जायगी।

सुलहराज– अच्छा, मैं उसे समझाकर ले आऊँगा। तुम नगर निवासी हो न, हमारे उपाय, उपचार क्या जानो। मैं शीघ्र ही आता हूँ।

(सुलहराज का प्रस्थान। सुरबाला अर्द्धमूर्छित-सी

उन दोनों के वार्तालाप को सुन रही थी। दुष्टों के चुंगल से मेरा कैसे उद्धार होगा ? यह सोचकर वह पुनः मूर्छित हो जाती है। श्रीमाली निकट जाकर उसे जगाने का प्रयत्न करता है। वह सचेत हो उठकर बैठ जाती है)

सुरबाला– (दुःख एवं क्रोध मिश्रित स्वर में) छोड़ दो, मुझे यहाँ क्यों लाये ?

श्रीमाली– बहुत भोली हो सुरबाला! नारी को एकांत में लाने का एक ही प्रयोजन होता है कि मैं तुम्हें वरण करना चाहता हूँ ?

सुरबाला– छिः तुम्हें लज्जा नहीं आती ऐसा घृणित प्रस्ताव रखते ? कौन हो तुम ?

श्रीमाली– मैं तुम्हारे सौंदर्य का प्यासा श्रीमाली हूँ।

सुरबाला– ओह! श्रीमाली! वही तो नहीं, जिसके पिता विवाह का प्रस्ताव लेकर मेरे पिता के समीप आये थे ?

श्रीमाली– (रोष में) और तुम्हारे पिता ने अमान्य कर दिया था।

सुरबाला– उचित ही था। अब मेरा सम्बन्ध रत्नसंचयपुर निश्चित कर फलदान हो चुका तब अन्यत्र कैसे किया जा सकता था ?

श्रीमाली– परन्तु मैंने तुम्हें हृदय से वरण कर लिया, मुझे कहाँ चैन थी ?

सुरबाला– तो क्या इसीलिए तुमने मेरे परिवार को मर्मान्तक पीड़ा दी, अनेक परिवारों को लूटा? उन्हें धन-जन-विहीन कर दिया?

श्रीमाली– यह मेरी विवशता थी प्रिये! तुम्हारे प्रति तीव्र अनुराग ने ही मुझे इस क्रूर-कर्म करने की प्रेरणा दी।

सुरबाला– यह अनुराग नहीं, वासना है जो अंधी और विवेकहीन होती है।

श्रीमाली – तुम्हारा कथन यथार्थ है पर मैं क्रूर नहीं हूँ। मुझे इस प्रकार न ठुकराओ सुरबाला! मैंने भिल्लों को केवल युक्ति बतलाई और प्रतिदान में तुम्हें पाया है। मुझे क्षमा करो सुरबाला!

सुरबाला– मेरी सुख-शांति नष्ट करके परिवार से बिछोह कराकर अब क्षमा याचना करते हो।

श्रीमाली– मैं वचन देता हूँ कि तुम्हें इससे अधिक सुख से रखूँगा। (मंजूषा की ओर संकेत कर) देखो यह बृहद् राशि।

सुरबाला– तुम भूलते हो श्रीमाली! पंकज की शोभा पंक के साथ रहने पर ही है, स्वर्ण पात्र में नहीं। वह वहाँ सुरभि नहीं बिखेरेगा किन्तु असमय में नष्ट हो जायगा।

श्रीमाली– (किंचित् कठोरता से) मुझे तुम्हारा उपदेश नहीं,

तुम्हारी स्वीकृति, तुम्हारा समर्पण चाहिए। मैं एक अहोरात्रि पर्यन्त समय देता हूँ। तुम अपने हिताहित का विचार कर सकती हो।

सुलहराज– (प्रवेश कर, मंद स्वर में) श्रीमाली! हमारे गुरु ओझा अस्वस्थ हैं, वे प्रातः आयेंगे। उन्होंने यह भस्म दी है। इसके चारों ओर बिखेरने से यह आज्ञाकारी सेवक की भाँति तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगी। ये वशीकरण भस्म है। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी, विश्वास रखो।

(सुलहराज चला जाता है। सुरबाला सुन लेती है)

श्रीमाली – सुरबाला! मैं दो दिन का थका हूँ। मुझे निद्रा आ रही है। तुम भी विश्राम करो। पर सावधान! भागने का प्रयत्न मत करना। घने वन में भिल्लों का कड़ा प्रतिबन्ध है। (श्रीमाली सुरबाला के चारों ओर भस्म छिड़क देता है)

सुरबाला– ये क्या कर रहे हो?

श्रीमाली – तुम्हारी सुरक्षा का प्रबन्ध कर रहा हूँ ताकि तुम्हें किसी प्रकार का भय न सतावे।

(श्रीमाली भी धरती पर साधारण वस्त्र पर सो जाता है)

सुरबाला– (स्वगत) हे प्रभू! अब क्या होगा? कोई मार्ग

सुझाओ। रोने लगती है। सिसकियाँ भरते- भरते निद्राधीन हो स्वप्न में खो जाती है)

(स्वप्न में)

नारी स्वर- छि: रोती हो सुरबाला! युक्ति से कार्य करो। रो-रो कर प्राण भी दे दोगी तो भी यहाँ से मुक्त न हो सकोगी।

सुरबाला- मैं क्या करूँ? तुम्हीं कोई मार्ग सुझाओ न!

नारी स्वर- क्या तुमने अभी नहीं सुना था? भिल्लराज ने श्रीमाली को यह कहते हुए भस्म दी थी कि वह वशीकरण भस्म है।

सुरबाला - सुना था। ऐसा प्रतीत होता है कि यहीं घुट-घुट कर मेरा शेष जीवन नि:शेष हो जायगा ।

नारी स्वर- छि: छि: कठिनता से प्राप्त ऐसे मंगल नारी जीवन को यूँ ही खो दोगी! सुनो। वहाँ साध्वी बनकर रहने में बाधा आएगी, युक्ति का सहारा अनिवार्य है।

सुरबाला- जो कहोगी, वही करूँगी। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, कुछ तो बताओ।

नारी स्वर- इतनी दयनीय मत बनो सुरबाला! दयनीयता नारी का कलंक है, प्रत्युत नारी इसी के कारण अवनति के गर्त में गिरती गई है। साहस करो।

सुरबाला- (घबराकर) कुछ संकेत तो दो मुझे! आकस्मिक विपत्ति ने मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है। इस दुर्घटना की तो जीवन में कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

नारी स्वर- (कड़वे स्वर में) अपनी सहायता स्वयं करो। जो सदा परमुखापेक्षी रहता है, वह न कर्म कर सकता है, न धर्म। स्वावलंबी बनने का अभ्यास करो।

सुरबाला- (अस्पष्ट स्वर में) कर्म नहीं कर सकता, धर्म भी नहीं! स्वावलम्बी.... बनूँ। दृढ़तापूर्वक बनूँगी। तनिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

नारीश्वर - सर्व प्रथम उस मूर्ख को यह विश्वास दो कि अब वही तुम्हारा सर्वस्व है तत्पश्चात् उसे नगर की ओर ले जाओ। तुम्हारे पति से निश्चय ही मिलना होगा।

सुरबाला- (प्रसन्नता पूर्वक) सच! वे मुझे मिल जायेंगे? (सुरबाला की निद्रा टूट जाती है। दीवाल के निकट श्रीमाली अचेत सोया है। वह विचार मग्न हो उठकर बैठ जाती है। अनायास उसकी आँखों में चमक-सी आ जाती है एवं हृदय की प्रसन्नता वचनों के द्वारा निकल पड़ती है)

सुरबाला- कैसा सुखद स्वप्न था?

(श्रीमाली सुनकर जाग पड़ता है।)

सुरबाला- क्या निर्णय ? कैसा निर्णय ? मैं सब समझती हूँ, तुम मुझसे सम्बन्ध विच्छेद करना चाहते हो ? मैं सदा तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।

श्रीमाली- क्या कह रही हो सुरबाला ?

सुरबाला- सत्य कह रही हूँ। तुमने मुझसे विवाह नहीं किया ? अब छोड़ने की बात करने लगे। तुम्हीं बताओ, मैं कहाँ जाऊँ ? कौन है मेरा ?

श्रीमाली- (स्वगत) प्रतीत होता है भस्म ने अपना प्रभाव दिखा दिया प्रकट में। ओह! तुम्हें भ्रम हो गया है सुरबाला! मेरी आकांक्षा सदैव तुम्हें अपने समीप रखने की है। तुम कितनी भली हो।

सुरबाला- मुझसे देवता ने कहा कि श्रीमाली तुम्हारा पति है।

श्रीमाली- (हाथ फैलाकर) ऐसा कहा ? आओ सुरबाला! मेरे पास आओ ? मेरी अभिलाषा पूरी कर दो प्रिये!

सुरबाला- रुको, रुको यह क्या कर रहे हो ? (पीछे हट जाती है)

श्रीमाली- अब अधिक न तड़पाओ, धैर्य टूट चुका है।

सुरबाला- तो मेरी ही कब अस्वीकृति है ? परन्तु देवता की बात तो माननी हो पड़ेगी। नहीं तो देवता शाप दे देंगे।

श्रीमाली- शाप दे देगें ? (विचार कर) अच्छा बताओ, तुम्हारे

देवता ने क्या कहा ? यही न कि श्रीमाली तुम्हारा पति है।

सुरबाला- देवता मेरे ही नहीं तुम्हारे भी हैं। सबके हैं। वे हमारे हित की ही बात कहेंगे।

श्रीमाली- क्या कहा ? यही तो मैं जानना चाहता हूँ।

सुरबाला- यही कि हम-तुम नवीन वस्त्र पहिन कर नगर के पश्चिमी भाग में बने मन्दिर में विधिवत् पूजन करें तभी हमारा जीवन सुखमय होगा। समस्त संकट स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे।

श्रीमाली- पर एक शंका है सुरबाला!

सुरबाला- क्या ?

श्रीमाली- कहीं तुम्हारे परिवार का कोई व्यक्ति मिल गया तो ?

सुरबाला- फिर तुम बहके। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कौन-सा परिवार है ? क्या तुम मुझे अपना नहीं मानते ?

श्रीमाली- ज्ञात होता है तुम अपना अतीत भूल चुकी हो। यह भी अच्छा हुआ। धन्यवाद है सुलहराज तुम्हें, तुमने भस्म क्या दी मेरी समस्त समस्यायें ही सुलझ गईं। चलो फिर सर्वप्रथम वही कार्य कर लिया जाये। हम निःशंक हो नगर में प्रवेश कर सकते हैं।

सुरबाला- तत्पश्चात् हम रात्रि को मंगलोत्सव मनायेंगे।

श्रीमाली - (अत्यन्त हर्षित हो) और फिर मधु यामिनी मैं...

कुछ मुद्रायें ले लूँ ? नवीन वस्त्र तो यहाँ हैं नहीं।

सुरबाला- मुद्रा न होंगी तो क्रय कैसे करेंगे ? हाट से वस्त्र लेकर हम मन्दिर चलेंगे। वहाँ स्नानादि से निवृत हो वस्त्राभूषण धारण कर देवता का पूजन अनुष्ठान कर लेंगे।

श्रीमाली- (मंजूषा से चन्द मुद्रायें लेकर) तो तुम भी अलंकृत हो लो। (चन्द आभूषण हाथ, गले के पहिनने को देता है।)

सुरबाला- नहीं, नहीं! मैं स्वयं अपने मनोनुकूल आभूषण धारण करूँगी।

श्रीमाली- मुझे क्या आपत्ति ? अपितु प्रसन्नता ही होगी।

सुरबाला- अब शीघ्र चलो दिवाकर की स्वर्ण किरणें महीतल को जगमगाने लगी हैं। पूजन अनुष्ठान प्रात:काल में ही सफल होते हैं।

(श्रीमाली व सुरबाला दोंनो चल पड़ते हैं। दोनों सतर्क हो चारों ओर देखते हुए चल रहे हैं। श्रीमाली इसलिए कि कोई परिचित न मिले, सुरबाला अपने सास-श्वसुर की टोह में निरत है। अनायास सुरबाला के पति आर्य नन्दिवर्द्धन सामने से आते हुए दिखते हैं। ये उदास मुद्रा में खोये- खोये से चले आ रहे हैं। सुरबाला उन्हें देख प्रफुल्लित हो उठती है। श्रीमाली नन्दिवर्द्धन को देख घबराता है परन्तु

यह सोचकर कि सुरबाला भस्म के प्रयोग से सब विस्मृत कर चुकी है, कुछ निश्चिंत होता है। नन्दिवर्द्धन के समीप आते ही-

(कृत्रिम रोष में)

सुरबाला- अरे! राजमार्ग पर ऐसे चला जाता है ? देखते नहीं सामने कौन आ रहा है ?

नन्दिवर्द्धन- (शीश ऊपर उठाकर देखते हैं) ओह! तुम यहाँ कहाँ सुरबाला! सब परिवार तुम्हारे अभाव में दु:खी है। कष्ट से न किसी ने भोजन किये हैं, न रात्रि भर सोये हैं और तुम्हारी एक ही दिन में कैसी दुर्दशा हो गई सुरबाला ?

सुरबाला- कुछ न पूछो आर्य! मुझे यहाँ तक सुरक्षित लाने का श्रेय इन देवस्वरूप सज्जन को है वरन् मेरा शव भी यहाँ नहीं मिलता।

नन्दिवर्द्धन- धन्यवाद बन्धु! उपकृत हुआ मैं। आपने सुरबाला को सकुशल यहाँ लाकर मुझे व मेरे परिवार को जीवनदान दिया है। आपकी प्रशंसा सूर्य को दीप दिखाने के सदृश होगी।

श्रीमाली- (रुक्षता से) नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। सुरबाला! शीघ्रता करो, विलम्ब हो रहा है।

नन्दिवर्द्धन- विलम्ब हो रहा है ? क्या कोई अन्य कार्य है ?

श्रीमाली- हाँ ! इन्होंने देवता का अनुष्ठान किया है, अतएव मन्दिर जाना है।

नन्दिवर्द्धन- यह तो मंगल कार्य है, हम भी चलते हैं।

श्रीमाली- नहीं ! आप क्या करेंगे ? आप विश्राम करें। हम दोनों अभी आते हैं।

सुरबाला- बन्धु ! आप इन्हें नहीं पहिचानते ? यही मेरे पतिदेव हैं और क्या ऐसा भी हो सकता है कि भ्राता भगिनी के गृह को बिना पवित्र किए ही चल दे ? मैं जानती हूँ फिर तुम नहीं आओगे।

नन्दिवर्द्धन- (आश्चर्य व हर्ष पूर्वक) तो क्या ये मेरे साले हैं? विवाह में इनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका।

सुरबाला- उस समय ये अस्वस्थ थे। मौसी आई थीं।

नन्दिवर्द्धन- ओह ! समझा मौसेरे भ्राता हैं।

सुरबाला- हाँ ! अब इनको गृह ले चलिए। इनका यथोचित आदर- सत्कार करना चाहिए।

नन्दिवर्द्धन - यह भी क्या कहने की बात है ? स्वागत करना मेरा ऐसे भी कर्त्तव्य है और फिर डाकुओं की कैद से निकालकर ये तुम्हें यहाँ तक सुरक्षित ले आये हैं। भ्रात से भी अधिक रक्षक बनकर चिरऋणी बना

दिया है।

सुरबाला- बन्धु श्रीमाली ! आपको हमारे यहाँ चलना होगा। भोजन करके ही आप जा सकते हैं।

नन्दिवर्द्धन- पागल हो क्या ? अरे ! ये कहो कि हमें पक्ष-दो पक्ष आतिथ्य करने का सुअवसर प्रदान करो।

श्रीमाली- मैं फिर आऊँगा। (जाने की ओर उद्यत होता है।)

नन्दिवर्द्धन- (हाथ पकड़कर स्नेह पूर्वक अपनी ओर खींचते हुए) मैं यों ही नहीं जाने दूँगा। इतने महान् उपकारी का मुझे क्या मीठा मुख कराने का भी अधिकार नहीं ?

श्रीमाली - (कृत्रिम हास्य पूर्वक) चलता हूँ (जैसे हाथ में कष्ट हो रहा हो) मेरा हाथ तो छोड़ो।

नन्दिवर्द्धन- ज्ञात होता है आप अपनी भगिनी से अधिक सुकुमार हैं। (हाथ छोड़ देते हैं)

(हाथ छूटते ही श्रीमाली सिर पर पैर रखकर भागता है। सुरबाला हँसती है। नन्दिवर्द्धन आश्चर्यचकित हो देखते हैं)

नन्दिवर्द्धन- (उच्च स्वर से) सुनो तो श्रीमाली ! सुनो....

सुरबाला- जाने दें उसे, चोर, लुटेरा........

नन्दिवर्द्धन- तुम कृतघ्न हो सुरबाला ! परम उपकारी भ्रात के प्रति ऐसे निन्दनीय दुर्वचन ?

सुरबाला- यह भ्रात नहीं नृशंस क्रूर कर्मी हत्यारा है। मेरे प्राण अभी भी काँप रहे हैं, देवता के शाप का भय बतलाकर युक्तिपूर्वक मैं उसे यहाँ तक खींच लाने में सफल हो सकी हूँ।

नन्दिवर्द्धन- क्या कह रही हो ?

सुरबाला- मेरा सौभाग्य कि इसके चंगुल से निकल आई। यह वही दुष्ट है जिसने अपने गृह में आग लगाई और भिल्लों से लुटवाया।

नन्दिवर्द्धन- अरे! तब फिर ये इतना विनम्र, दयालु कैसे हो गया ?

सुरबाला- ये व्यथा कथा निश्चिन्तता से बतलाऊँगी, नियति शुभ थी। **पूर्व में कभी मलिन विचार कर उनका प्रायश्चित कर लिया होगा। तभी मेरे सतीत्व की रक्षा हो गई और परिजनों से बिछुड़कर पुनः मिलन हो गया ?**

नन्दिवर्द्धन- कितना महान संकट आया, लो अब टल गया है।

सुरबाला- **हमारी अज्ञानता ही संकट को निमंत्रित करती है आर्य! आत्मस्वभाव से विमुख हो विषय-कषायों का फल यही तो है।**

नन्दिवर्द्धन- अब हम सावधान हो अभीष्ट फल हेतु विकारों से उन्मुखी मंगलपथ का अनुसरण करेंगे।

सुरबाला- अब शीघ्र चलें। मातुश्री एवं पिताश्री की चरणरज ले लें, उनका आशीर्वाद पाने को मन व्याकुल हो उठा है।

नन्दिवर्द्धन- तुम्हें पाकर वे अत्यन्त आह्लादित होंगे।

सुरबाला- (सहसा उदास होकर) वे कहीं मुझे अस्वीकार न कर दें।

नन्दिवर्द्धन- तुम्हें ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए सुरबाला! तुम्हारी पवित्रता पर कौन संदेह करेगा ? प्रसन्न मन से चलो। (दोनों चलने को उद्यत होते हैं कि बचाओ-बचाओ की चीख सुनाई पड़ती है। वे दोनों उसी दिशा में जाते हैं)

सुरबाला- प्रतीत होता है जैसे कोई भयानक काण्ड हो गया है

नन्दिवर्द्धन- आओ देखें! क्या बात है ? हम कुछ सहायता कर सके तो हमारा सौभाग्य होगा।

(दोनों वहाँ जाते हैं। जनसमूह एकत्रित है। श्रीमाली के पैरों में नाग लिपटा है। वह भय से अचेत हो जाता है। जनसमूह भी भयभीत निरुपाय-सा चिंतित हो देख रहा है।

नन्दिवर्द्धन- अरे ! यह तो श्रीमाली है।

सुरबाला- इसे अपनी करनी का तत्काल फल मिल गया।

नन्दिवर्द्धन- (मौन रहने का संकेत कर) शी ई.......ऐसा न कहो

सुरबाला ! इसकी करतूतों की किसी को भनक पड़ गई तो ये एकत्रित जनसमूह इस अर्द्धमृतक को भी यातनायें देकर निष्प्राण कर देगा।

सुरबाला- आप सत्य कह रहे हैं। ये करुणा का पात्र है।

नन्दिवर्द्धन- मैं किसी मंत्रवादी को बुलाकर लाता हूँ। वह सर्प को भी पकड़ लेगा एवं इसे निर्विष भी कर देगा।

वृद्धा- काला नाग है। इसके काटे का उपचार भी असंभव है।

एक व्यक्ति- भगवान न करे ! इसको काट खाये।

दूसरा व्यक्ति - शीघ्र ही कोई सपेरा आजाय तो अच्छा है वरन्..

वृद्धा- हटो, हटो, स्थान दो सपेरा आ गया है।

चम्पक- बड़ा भारी नाग है, इसको पकड़ना सरल नहीं है।

नन्दिवर्द्धन- प्रयत्न करो, जो पारिश्रमिक चाहोगे वह मिलेगा।

सपेरा- प्राण तो मुझे भी प्यारे हैं श्रेष्ठी ! मर गया तो धन का क्या होगा ? फिर भी प्रयत्न तो कर ही रहा हूँ। (सपेरा चंपक बीन बजाता है पर नाग अपनी लपेट नहीं छोड़ता। वह बीन रख देता है। अब स्पष्ट मंत्रोचारण करता हुए बीच-बीच में फूँकता जाता है। पर नाग टस से मस नहीं होता बल्कि तीव्र फुस्कार करता है। चंपक थक कर माथे पर आये स्वेद-कणों को पोंछता है।)

एक व्यक्ति- क्यों चंपक दादा! क्या वह बेचारा हमारे देखते-देखते मृत हो जायगा ?

चंपक- क्या करूँ बन्धु! कुछ समझ में नहीं आ रहा। बड़ा कुटिल विषधर है। मेरे सब प्रयोग निष्फल हो रहे हैं।

आकाश ध्वनि- इसका एक ही सरल उपाय है। कोई शीलवन्ती नारी, नाग को अपने कर कमलों से अलग कर इस व्यक्ति को जीवन-दान दे सकती है। (जनसमूह जिज्ञासु दृष्टिकोण से चारों ओर देखता है कि यह ध्वनि कहाँ से आ रही है तत्पश्चात् समूह में खड़ी महिलाओं की ओर प्रश्नवाचक अनेक दृष्टियाँ मुड़ जाती हैं)

चंपक- आओ कोई आगे बढ़ो। प्राणदान के परम उपकार के साथ ही अपने सतीत्व की परीक्षा में भी उत्तीर्णता प्राप्त कर लो।

वृद्धा- (चिड़कर) कौन अपने हाथों अपने प्राण संकट में डाले। ऐसी परीक्षा देकर किसी को उत्तीर्णता का प्रमाणपत्र नहीं चाहिए।

सुरबाला- मुझे चाहिए प्रमाण पत्र! नाग को मैं निकालूँगी। (सुरबाला की सास सोमिला व ससुर पुण्यशर्मा भी वहाँ जन-रव सुन कर आ जाते हैं)

नन्दिवर्द्धन- (रोकते हुए) पागल हो गई हो क्या सुरबाला! क्यों प्राण देने पर तुली हो ?

सुरबाला - सुना नहीं! कि इस व्यक्ति को शीलवती ही जीवन दान दे सकती है। मैं अपने सम्मुख किसी व्यक्ति को क्यों मरने दूँ ?

सोमिला- विषधर, विषधर ही है सुरबाला! सतीत्व की परिभाषा से अनभिज्ञ, वह तुम्हें क्या काटने से छोड़ देगा।

सुरबाला- मुझे अपने सतीत्व पर अडिग विश्वास है माँ श्री!

पुण्यशर्मा- किन्तु नाग तो अविश्वस्त है। तुम्हारी इस भूल का दु:खद परिणाम तुम्हें अकेले नहीं, हमें भी भुगतना होगा।

सुरबाला- आप निश्चिंत रहें पिताश्री! ऐसा कुछ नहीं होगा। स्वर्णिम वर्तमान, भविष्य को भी सुनहरा बना देता है।

(मौन हो प्रभु स्मरण का मौन-वन्दन करती है)

सुरबाला- तक्षक! इस व्यक्ति को अपने पाश से मुक्त करो। कष्ट देना एवं कष्ट भोगना अहितकर है। यह व्यक्ति तुम्हारे भय से ग्रस्त हो कष्ट में है और तुम क्रोध की

जलन से स्वयं कष्ट में हो। इसके साथ ही तुम स्वयं को भी निर्भय करो ।

(नाग जकड़न को शिथिल करता है। सुरबाला उसे हाथ से उठा कर धरती पर छोड़ देती है)

सुरबाला- जाओ अपने मार्ग पर नि:शंक गमन करो। तुम्हें कोई नहीं छेड़ेगा।

(नाग तीव्र गति से चला जाता है। सब धन्य-धन्य कह उठते हैं। श्रीमाली आँख खोलकर चित्त-चकित हो चारों ओर देखता है।)

सुरबाला- तुम भयमुक्त हो श्रीमाली! उठो।

श्रीमाली- क्या मैं जीवित हूँ? मुझे नाग ने नहीं काटा?

सुरबाला- नहीं, तुम बिलकुल स्वस्थ हो।

वृद्धा- ये है तेरी जीवन-दातृ। इसी ने अपने प्राणों से खेलकर उस भयंकर विषधर को हाथों से उठा कर अलग किया है। धन्य है! इस सुकुमारी को।

(जन समूह छटने लगता है।)

श्रीमाली- (चरणों में गिरकर) तुम साक्षात् देवीस्वरूप हो भगिनी! मैं तुम्हारा जघन्यतम अपराधी हूँ। मुझे क्षमा कर दो।

सुरबाला - उचित कर्त्तव्य करना मानवोचित धर्म है श्रीमाली! उठो!

नन्दिवर्द्धन- क्षमा ही है श्रीमाली! भयंकर नाग को अपने हाथों से

हटाया है इन्होंने। इससे अधिक क्षमा का और क्या प्रमाण चाहिए।

श्रीमाली- मैं अपने घृणित कृत्य पर लज्जित हूँ बन्धु! तुम सब सौम्य भद्र प्राणियों को मैंने भीषण यंत्रणा दी। यह नृशंस कार्य कर मैंने निश्चित ही अपना अहित किया है एवं आपने मुझ जैसे अधम पर उपकार कर अपनी सज्जनता का ही परिचय दिया है।

सुरबाला- **सब अपना ही हित-अहित करते हैं, जो अन्यथा देखने में आता है; वह तो अज्ञान से उपार्जित कर्मों का फल है। वर्तमान में पवित्रता आते ही अपराधों की कालिमा स्वयमेव धुल जाती है।**

श्रीमाली- मेरे अन्तस्तल को उज्ज्वल करने वाली देवी! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मेरा भावी जीवन आत्मकल्याण में ही व्यतीत होगा।

नन्दिवर्द्धन- हमारी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारी सद्बुद्धि उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हो।

श्रीमाली - धन्यवाद बन्धु! आज्ञा दें, मैं चलूँ।

सुरबाला- जाओ पर कर्त्तव्य को विस्मृत न करना।

(श्रीमाली का प्रस्थान)

नन्दिवर्द्धन- सुरबाला! तुम्हारी पवित्रता ने भविष्य में उठने वाले

अनचाहे सन्देहों की जड़ भी काट दी। तुम जैसा नारी -रत्न पाकर मैं धन्य हो गया।

पुण्यशर्मा- हमारे परिवार का भी गौरव बढ़ा है आयुष्मती! हमें अपनी पुत्रवधू पर गर्व है।

सुरबाला- (लज्जित हो) कृतज्ञ हूँ पिताश्री! सदैव आप सबके स्नेह की आकांक्षी हूँ।

सोमिला- चलो आयुष्मती सुरबाला! गृह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। शीघ्र चलो।

सुरबाला- गृह में लौटने की मुझे भी अत्यन्त व्यग्रता है माँ श्री! चलें..

(सबका प्रस्थान)

- **आत्मानुभव के बिना दूसरा कोई सुखी होने का उपाय नहीं है।**
- **निर्ग्रन्थ जीवन ही वास्तविक आनन्दमय जीवन है।**
- **देह में एकत्त्व बुद्धि**

  संयोगों में ममत्व बुद्धि

  स्वयं होते हुए कार्य में कर्तृत्व बुद्धि और

  भोगों में सुख बुद्धि ही संसार का मूल है।

-ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'

चक्कर

पात्रानुक्रमणिका :

सन्तोष	- शिक्षित नागरिक
रमा	- सन्तोष की पत्नी
आलोक	- सन्तोष का पुत्र
अशोक	- सन्तोष का पुत्र
मंजू	- सन्तोष की पुत्री
बंगाली	- ठग
समय	- दोपहर
स्थान	- एक साधारण स्थिति का घर

(एक गृहस्थ का घर। परिस्थिति साधारण है फिर भी बैठक आधुनिक सज्जा से सुसज्जित है। परिवार में संतोष कुमार और उनकी पत्नी रमा एवं अशोक, आलोक दो पुत्र एवं एक पुत्री मंजू है। अशोक सर्विस में है। आलोक एम.ए. फाइनल में व मंजू चौथी की हिन्दी पढ़ रही है। सोफा पर बैठे पति-पत्नी में वार्तालाप चल रहा है)

संतोष- (प्रवेश करते ही) तुम्हें याद है रमा! जब एक ज्योतिषी आये थे? उन्होंने कहा था कि आठ वर्ष बाद तुम्हें गड़ा धन मिलेगा।

रमा- हाँ, बिलकुल याद है, शांताराम? सन् बहत्तर में धन

मिलेगा, यही न भविष्यवाणी की थी। सो वह भी समाप्त हो गया।

संतोष- मिलने का उपाय तो हमें करना पड़ेगा या वह भी ज्योतिषी कर देगा?

रमा- वस्तु मिलने का समय आता है तो उपाय भी स्वयमेव होने लग जाते हैं।

संतोष- अर्थात् तुम्हारे कहने का अर्थ यही है कि उसने झूठ बतलाया है। जितनी भी पुरानी बातें बतलाई, सब सच नहीं निकलीं?

रमा- भूतकालीन बातें सत्य थी पर भविष्य की एक भी नहीं। दरअसल बात यह कि कुछ ज्योतिषी सिद्धि करते हैं और इन सिद्धियों में किसी न किसी इन्द्रिय का विषय दान करना यानि खोना पड़ता है, इसीलिए शान्ताराम बहरे थे।

संतोष- तो इससे क्या?

रमा- इससे वे घट चुकी घटनाओं को बतला विश्वास जताने में सफल हो जाते हैं पर भविष्य की अघट घटनाओं को बतलाने में असमर्थ रहते हैं।

संतोष- खैर, छोड़ो काम की बात सुनो! एक बंगाली है, वह गड़ा धन निकालने में सिद्ध-हस्त है। आज उससे

भेंट हो गई। मैंने उसे घर बुलाया है। यदि वह धन निकाल दे तो सब समस्यायें हल हो जायेंगी।

रमा- (व्यंग्य से) हो चुकीं। (निराशा से) किसका विश्वास किया जाये।

संतोष- ज्योतिषी ने तो कहा था न?

रमा- कहा तो था और बिना देखे, स्थान पूरे लक्षणों सहित बतलाया था, अतः कुछ-कुछ विश्वास भी होता है।

संतोष- उपाय करने में क्या हानि?

रमा- हानि बहुत बड़ी है। धन का चक्कर बुरा होता है, कभी- कभी लेने के देने पड़ जाते हैं।

संतोष- एक बार आजमा कर देख लिया जाये। धन लाभ होने का समय आ गया होगा, इसलिये भगवान ने उसे भेज दिया हो।

रमा- भगवान क्या आपका सेवक है जो व्यर्थ के कामों में लगा रहेगा? भगवान को क्यों घसीटते हो अपने बीच।

संतोष- अच्छा बाबा नहीं घसीटता; मुँह से शब्द निकला और तुमने पकड़ा। पर दोनों कान खोल कर सुनो- वह अभी आता होगा; हमें चाहिए कि उससे लाभ उठा लिया जाय।

रमा- क्या शांताराम का कहना सच हो सकता है? उसकी बात पर सहसा अविश्वास भी नहीं होता। बिना देखे उस कमरे का ऐसा नक्शा खींचा कि चकित हो जाना पड़ा। (घंटी बजती है)

संतोष- आ गया रमा वह, निश्चित वही होगा।

(संतोष दरवाजा खोलते हैं एवं आगंतुक बंगाली के साथ आ जाते हैं)

संतोष- (रमा से) मैं इन्हीं की बात कर रहा था। बैठो, भाई! बैठो।

रमा- अच्छा तो आप ही हैं? आपको ये कैसे मालूम पड़ जाता है कि धन कहाँ गड़ा है?

बंगाली - बहिनजी! ये विद्या है। बड़ी कठिनता से आती है। मैंने शहर के कई सेठों को धनी-मानी बना दिया। नीम वालों को दो लाख का धन निकाल कर दिया। सेठ प्यारेलाल को तो सोने की ईंटें निकाल कर दीं। अशर्फीलाल मेरे ही कारण आज करोड़पति बन गये।

रमा- आपने सबको रईस बनाया पर आपकी दशा तो साधारण- सी दिख रही है?

बंगाली - (बगलें झांकते हुए) हं हं हं.... .... मैं तो जनता का सेवक हूँ बहिनजी!

फिर भी अपने लिये भी तो कुछ निकालना था।

रमा- भाग्य का खेल है सब। जिसके भाग्य में होता है, उसी को मिलता है। फिर ये सब बेईमानी कर गये।

बंगाली- धन मिला कि पारिश्रमिक भी नहीं देना चाहते, प्रतिशत तो छोड़िये।

रमा- जब आपको इतना कटु अनुभव है तब आप ये काम करते ही क्यों हैं?

बंगाली- बिना किए चैन नहीं पड़ता। इल्म है अपने पास तो दूसरों का भला करना अपना कर्त्तव्य हो जाता है।

संतोष- (बड़े पुत्र आलोक को बुलाते हैं) आलोक!

आलोक- जी बाबूजी! (आता है)

संतोष- इन महाशय को वह कमरा बता दो, जो दुबेजी खाली कर गये हैं।

आलोक- आइए..(दोनों चले जाते हैं)

संतोष- रमा! एक बार जुआ खेल जाना चाहिए।

रमा- दाँव सही पड़े तो ठीक वरना फर्श फिर से बनवाने का खर्च और सिर पर पड़ेगा।

संतोष- अब जो होगा सो देखा जायेगा। एक बार यह भी उपाय आजमा लिया जाय।

रमा- **धन का आकर्षण मनुष्य को विवेकहीन** अंधा

बना देता है। विश्वास न होते हुये भी कहीं आशा की कच्ची डोर लटकती रहती है।

संतोष- तो तुम्हारा भी इस कार्य में सहयोग है?

रमा- इच्छा न होते हुये भी दृढ़ होकर मना नहीं कर पा रही हूँ। शायद भाग्योदय हो और कार्य में सफलता मिल जाये।

(आलोक बंगाली को लेकर आ जाता है।)

बंगाली- देख लिया बाबूजी! मैंने भैया को स्थान भी बता दिया, जहाँ हंडा गड़ा है।

आलोक- परन्तु बाबूजी! शान्ताराम ने यादवजी वाला कमरा बताया था।

बंगाली- कोई बात नहीं भैया! दस गज की दूरी पर गड़ा धन भी हम खींच लेते हैं।

आलोक- क्या विचित्र बात करते हैं आप भी? कहीं ऐसा भी होता है!

बंगाली- आप क्या जानो इल्म को? मैं अभी कुछ नहीं कहता, धन निकाल कर बता दूँगा तो अपने आप विश्वास हो जायेगा। कोई कुँआरी कन्या है आपके यहाँ? तो बुलाइये उसे।

संतोष- हाँ! हाँ! अपनी बच्ची है, सात-आठ साल की।

बंगाली- मैं उसे धन का कलश लिये भगवान दिखा दूँगा।

रमा- मंजू! मंजू!

मंजू- (आकर) क्या है माँ?

बंगाली - यहाँ आओ बेबी! मैं तुम्हारी आँख बन्द करूँगा। तुम्हें कलश लिये देवता दिखेंगे। देखो ऐसे (अपने सिर पर हाथ ले जाकर संकेत करता है कि जैसे खड़ा हो, तत्पश्चात् मंजू की आँखें इस ढंग से बंद करता है कि उसे कुछ भी न दिखे)

दिख रहे है न बेबी! भगवान कलश लिये ?

मंजू- हाँ! दिख रहे हैं।

संतोष- सच कह रही है मंजू!

मंजू- हाँ बाबूजी! जैसे अभी ये बतला रहे थे, बिलकुल वैसे ही।

रमा- ये कोई बड़ी बात थोड़े ही है। जिस वस्तु को देख कर तुरन्त आँख बन्द कर लो तो वही आकार दिखता है, यह तो दृष्टि का नियम है।

संतोष- तुम तो व्यर्थ की बात कहती हो। हमें फल खाना है, पेड़ नहीं गिनना । हाँ बताइये बंगाली बाबू। आप कब हमारा कार्य करेंगे ?

(मंजू चली जाती है)

बंगाली- जब आपका हुक्म हो।

संतोष- कोई मुहूर्त वगैरह नहीं देखना है ?

बंगाली- शुभ कार्य में मुहूर्त की क्या जरूरत, पूजा-पत्री के लिये सामग्री लगेगी। आप रुपया दें तो कार्य शुरु कर दूँ।

संतोष- रुपया तुम लगाओ, जो मिले सो आधा-आधा कर लेना ।

बंगाली- वह तो आपकी इच्छा है बाबूजी! वैसे बाद में कोई नहीं देता है।

रमा- **सब धान बाईस पसेरी नहीं होती** भाई! हम जो वायदा करते हैं, उसका निर्वाह भी करते हैं।

बंगाली - मैं मानता हूँ बहिनजी! पर हम गरीब आदमी, पूजा में पैसा कहाँ से लगायेंगे।

रमा- तब तो हमें मंजूर नहीं। आप धन में मनचाहा हिस्सा ले सकते हैं।

बंगाली- (गिड़गिड़ाकर) हमारी कठिनता है बहिनजी! इतना पैसा हमारे पास नहीं है।

संतोष- (आश्चर्य पूर्वक) डेढ़ दो हजार!

बंगाली- और क्या? लाखों के सामने हजार की क्या कीमत? मुझे तो भवानी माई की पूजा करनी पड़ेगी। वे प्रसन्न होंगी तभी काम बनेगा।

मिलेगा तो बाद में, पहिले हम कहाँ से लायें इतना रुपया ?

संतोष– (निराशा से) और फिर यह ही पक्का नहीं है कि धन मिलेगा ही, न भी मिले।

रमा– ग्यारन्टी से मिलेगा बहिनजी! (दृढ़ता पूर्वक) बंगाली की बात कभी झूठी नहीं हुई।

बंगाली – अच्छा कम से कम बताओ, कितने रुपए में काम हो सकता है ?

संतोष– बाबूजी! आप ऐसा करें आठ सौ रुपए दे दें, बाकी मैं लगा लूँगा।

बंगाली – आठ सौ ?

संतोष– इससे कम में किसी हालत मैं काम नहीं चलेगा।

बंगाली – आप विचार कर लें, तब तक मैं यहीं पास में होकर आता हूँ, जरा काम है। आप रुपए देंगे तो आज से ही काम शुरु कर दूँगा। (चला जाता है)

संतोष– इतने रुपये तो अपने पास हैं ही नहीं, फिर क्या किया जाय ?

रमा– जब काम करवाना ही है तो रुपयों का प्रबंध करना ही पड़ेगा। आलोक! तुम मेरा हार और कंगन गिरवी रख कर पैसा ले आओ।

संतोष– तो क्या तुम रुपया दे दोगी ?

रमा– काम करवाना है तो रुपया देना ही होगा।

संतोष– इसके पहिले भी एक आदमी ऐसा आया था, उस समय तो तुमने रुपया देने से स्पष्ट इंकार कर दिया था और आज ?

रमा– आज भी इंकार कर देती किन्तु शांताराम की बात याद आ जाती है और ऐसा लगने लगता है कि संपत्ति हाथ लग ही जाय।

संतोष– सोच लो रमा! एक बार आठ सौ की रकम थोड़ी नहीं होती।

रमा– (खिसिया कर) आप ही लाये हैं उसे। मैं बुलाने तो गई नहीं थी, न ही आप से इस विषय में चर्चा ही की थी।

आलोक– बाबूजी! मुझे तो ऐसा लग रहा हैं जैसे हम जान-बूझ कर मक्खी निगल रहे हैं।

अशोक– (प्रवेश कर) पर पण्डित शान्ताराम जी के कथनानुसार समय आ गया है, इसीलिए इसकी बुद्धि खराब हो गई है।

रमा– अविश्वनीय होते हुए भी सम्भव है-बिल्ली के भाग्य से सीका टूट जाय। तू कहाँ था अशोक ?

अशोक– मैं यहीं था और आपकी सब बातें सुन चुका हूँ। आलोक हम भी नहीं सोच सकते कि बंगाली से

साँठ-गाँठ होगी।

यह तो सम्भव है ही नहीं।

संतोष- कहाँ वे पंडित जो मद्रासी और कहाँ ये बंगाली ? उन

अशोक- पंडितजी को आये भी बहुत साल हो गये।

इसीलिए तो मन बहक रहा है। यदि वे न बतलाते तो

रमा- मैं इस अंधविश्वास में न पड़ती।

बिना पैसा लिए वह कार्य करे तो अच्छा !

संतोष- वह इस शर्त पर तैयार नहीं है।

आलोक- तब फिर एक बार धोखा खा ही डालो। (हँसकर)

अशोक- धन नहीं मिला तो सीख तो मिलेगी ही।

रमा- (हाथ के कंगन व गले का हार उतार कर देते हुए) लो आलोक ! इन्हें रखकर रुपए ले आओ।

संतोष- अरे ! अरे ! ये क्या कर रही हो ?

रमा- तुम तो जाओ आलोक ! ये तो ऐसा कहते ही रहेंगे।

आलोक- (जेवर लेकर जाते हुए) तब तक आप और विचार कर लें।

(आलोक चला जाता है।)

संतोष- सोच समझ कर कार्य करो रमा !

रमा- सोचने समझने की बात ही नहीं है। यह अंधा काम हैं। यदि भाग्य से शान्ताराम की बात सत्य हो गई तो

पौ बारह है, वरना आठ सौ से और मुड़े।

संतोष- जमीन का फर्श कौन मुफ्त में हो जायेगा ?

रमा- तो फिर मना कर दो। हाँ और नहीं के चक्कर में दिमाग ही खराब हो गया।

संतोष- कुछ ऐसी युक्ति निकालो कि रुपये भी न लगें और काम हो जाय।

रमा- यह बात बिलकुल व्यर्थ है। वह इतना मूर्ख नहीं, कि कोरा रहकर काम करे। सत्य से वह पूर्णतः अवगत होगा।

अशोक- यूँ तो इसके दुष्फल को हम भी जानते हैं पर **लालच बुरी बलाय**। एक बार ठोकर खाकर अनुभव के द्वारा हमेशा के लिए सतर्क हो जायेंगे।

संतोष- पैसे देने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।

अशोक- बाबूजी ! आप ही इसे लाये हैं और आप ही ऐसा कहने लगे।

रमा- मुझे तनिक भी विश्वास नहीं कि शांताराम का कथन सत्य हो जायगा परन्तु इतना अवश्य है कि बार-बार का भ्रम अवश्य टूट जायगा।

संतोष- यदि भाग्य में धन मिलना है तो शायद इसी बहाने मिल जाय।

रमा– भाग्य तो दूर की कौड़ी लेकर आता है पर मिलना हो तब न।

(घण्टी बजती है, अशोक दरवाजा खोलता है। बंगाली आता है। इसी समय आलोक भी आ जाता है)

बंगाली – बाबूजी ! आपने क्या विचार किया ?

संतोष– भाई ! आठ सौ रुपया बहुत होता है आप शुरु करें। हम बाद में रुपया दे देंगे।

बंगाली– शुरु कैसे कर सकूँगा। पूजा–पत्री में सामग्री लगेगी। वह बिना पैसों के कैसे आयेगी ? आप मेरा पारिश्रमिक ही समझ कर दे दें।

संतोष– फिर भी ......

बंगाली – आप तो ऐसा समझ रहे हैं, जैसे रुपये मेरी जेब में जा रहे हों। आप मुझे पच्चीम–तीस वर्षों से जानते हैं। बेईमान नहीं हूँ, यहीं का रहने वाला हूँ। जाऊँगा कहाँ ?

संतोष– आलोक ! दे दो इन्हें रुपया ! पर भैया ! ये रुपया जेवर रख कर आये हैं।

बंगाली – कोई बात नहीं बाबूजी ! धन निकलते ही आप लखपति बन जायेंगे, आठ सौ की क्या बात ? पर पहले त्याग तो करना ही पड़ता है।

संतोष– सचमुच धन मिलेगा ?

बंगाली– अवश्यमेव, गड़ा धन निकालना ही मेरा काम है। मुझे अपने ऊपर विश्वास है। जहाँ भी मैंने हाथ लगाया है, सफल हुआ हूँ।

(आलोक रुपया दे देता है)

बंगाली – (रुपया लेकर) अच्छा बाबूजी ! आज शाम को शुभ मुहूर्त में काम शुरु कर दूँगा। आप निश्चिंत रहें। (चला जाता है)

रमा– मुझे लगता है हम रुपया देकर पूर्व जन्म में लिए हुए ऋण के भार से मुक्त हो रहे हैं।

संतोष– अब ऐसे कुवचन न निकालो। भगवान से प्रार्थना करो कि धन मिल ही जाय।

रमा– (हाथ जोड़ कर) हे भगवान ! छप्पन करोड़ की चौथाई शीघ्र भेज देना। हम सब अज्ञान बालक तुमसे विनम्र निवेदन करते हैं।

(संतोष खिसियाकर चले जाते हैं)

रमा– वो नाराज हो गये।

एक सप्ताह पश्चात्

समय- दोपहर

स्थान- मकान का वह भाग जहाँ गड्ढा खुदा है।

(गड्ढे के पास रमा खड़ी है। अशोक-आलोक भी वहाँ हैं)

रमा- गड्ढे में देखें क्या है?

आलोक- जो होगा सो देखा जायेगा। वह बंगाली मना करता था न छूने को। मत छुओ माँ! कुछ का कुछ न हो जाय।

रमा- अरे पागल! क्या होना है।

आलोक- फिर भी कोई नया झंझट मोल नहीं लेना चाहिए।

अशोक- भैया ऐसे डर रहे हैं, मानों गड्ढे में कोई भूत बैठा हो।

रमा- शायद बैठा हो। (हँसती है) वह भूत एक रकाबी रख गया है वहाँ सोने की।

आलोक- आप तो मजाक करती हैं।

रमा- सच कह रही हूँ आलोक! मैं तो उसी दिन देख चुकी हूँ, जिस दिन वह रख गया था।

अशोक- आपने बताया नहीं हम लोगों को।

रमा- इसलिए नहीं बताया कि तुम्हारे बाबूजी हैं शक-शुवहा वाले, वे कहीं कुछ धारणा न बना लें।

अशोक- सच बताओ माँ! क्या है इसमें।

रमा- निकालो, जरा ये मिट्टी अलग करो। (पास में रखे

फावड़े से अशोक मिट्टी निकालता है। रकाबी चमकने लगती है। अशोक एकदम उछल पड़ता है)

अशोक- सचमुच चमक रहा है कुछ। (कहते हुए रकाबी निकाल लेता है। उलट-पलटकर देखते हुए) सोने जैसी तो नहीं लग रही।

रमा- तेरे छूते ही वह पीतल की हो गई। ..... बस अब तक आठ सौ रुपये में यही हाथ लगा है और जैसे कि वह आश्वासन दे रहा है, यदि कुछ छोटी-मोटी चीज और रख दे तो वह और मिल जायेगी, नहीं तो आठ सौ तो जा ही चुके हैं।

आलोक- इसे कहते है **गरीबी और गीला आटा**। सचमुच हम सबकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हुई कि शिक्षित होकर भी अपने हाथों बेवकूफ बन गये।

रमा- लालच बुरी बलाय। धन खोया ही, दूषित मनोभावना ने धर्म भी लूट लिया।

अशोक- देखो बाबूजी के साथ आता है कि नहीं।

आलोक- वायदे तो रोज कर रहा है। मुझे विश्वास नहीं कि वह आयेगा।

रमा- यदि वह आ जाता है तो हमें शान्ति से काम लेना होगा। वह रकाबी अभी वहीं रख दो।

आलोक- अरे! पकड़कर उसकी जमकर पिटाई कर देनी चाहिए, मिलना-जुलना तो कुछ है ही नहीं।

अशोक- (रकाबी रखकर मिट्टी पूरते हुए) और क्या? उसे किए की सजा मिलनी ही चाहिए।

रमा- गलत बात! गलती तो अपनी है। उसका क्या दोष? दुनियाँ अपनी स्वार्थ सिद्धि में व्यस्त है और फिर आज के समय में निम्न श्रेणी वालों से बैर-विरोध करना मुफ्त में आपत्ति मोल लेना है।

अशोक- यह भी बात सच है भैया! मारने-पीटने से हमें मिलना भी क्या है? सम्पत्ति तो गई ही, अब नई विपत्तियों को निमन्त्रण क्यों दें?

रमा- जो इतना धोखेबाज चालाक है, वह क्या और अधिक निम्न स्तर पर नहीं उतर सकता? उसका क्या विश्वास? समझो पैसों से ही सारी आपत्तियाँ सिमिट कर चली गई। (घण्टी बजती है। अशोक दरवाजा खोलता है। सन्तोष बंगाली को लेकर आते हैं। सबको शान्त रहने का संकेत करते हैं)

सन्तोष - अरे भाई! बड़ी मुश्किल में आये हैं ये।

रमा- क्यों भैया! तुमने अधूरा काम क्यों छोड़ दिया?

बंगाली- क्या बताऊँ बहिनजी! बच्चा बीमार हो गया।

रमा- पर अब तो पूरा सप्ताह हो चुका, ऐसा किसी को धोखा नहीं देना चाहिए।

बंगाली - (कान पकड़ कर दाँत से जीभ काटते हुए) नहीं, नहीं बहिनजी! मन्त्र सिद्धि के बिना कोई काम नहीं होता। कलकत्ता भी नहीं जा पाया, काली माई की पूजा के लिए।

अशोक- हमारे तो आठ सौ रुपये फँस गये। कुछ निकाल कर तो बताओ।

आलोक- फर्श खराब है, न इसे हम छू सकते हैं, न बनवा सकते हैं, काम जल्दी खत्म होना चाहिए।

बंगाली - मंत्र - तंत्र का काम है न भैया! दूसरा कोई छू दे तो लेने के देने पड़ जाये।

सन्तोष- हम लोग बाबू! खुद ही डरते हैं। जिसका बन्दर वही नचाये। तुम जानो तुम्हारा काम जाने।

रमा- अच्छा आये हो तो कुछ करो अब।

(बंगाली गड्ढे के पास बैठ आँख बन्द कर कुछ मंत्रादि पढ़ने का स्वांग रचता है फिर एकदम से चीख कर एक हाथ गड्ढे में डाल कर ऐसा अभिनय करता है मानों कोई अदृश्य शक्ति उसका हाथ खींच रही हो। थर-थर काँपने लगता है। रमा को हँसी आ

जाती है पर रोकने में वह सफल हो जाती है)

बंगाली - (दूसरा हाथ बढ़ाते हुए) भैया! पकड़ना मेरा हाथ। (आलोक उसका हाथ पकड़ता है) खींचो भैया! जोर से खींचो।

(बड़ी मुश्किल से हाथ बाहर आता है। उस हाथ की मुट्ठी बँधी है)

बंगाली - (मुट्ठी खोलकर दिखाते हुए प्रसन्नता से) देखिये सन्तोष बाबू! कितनी कठिनता होती है। लगता है मैया अभी पूर्ण प्रसन्न नहीं है। कुछ और पूजा चाहती है। एक अंगूठी तो हाथ आई ।

आलोक- (अंगूठी हाथ में लेकर) कहीं ये पीतल की तो नहीं है? शायद हीरा जड़ा उसमें।

अशोक- लाखों की होगी अंगूठी।

बंगाली- आप तो भैया! मजाक करते हैं। (संतोष से) बाबूजी! आपने कहा था कि पूजा के लिए और पैसे दे देंगे, सो आप दे दें तो मैं जल्दी ही काम निपटा दूँ।

आलोक- एकाध चीज और निकाल दो तो फिर रकम का जुगाड़ करें।

बंगाली - बिना पैसों के तो भैया! असम्भव काम है। तुम्हीं ने देखा अभी मेरे प्राणों की पड़ गई थी।

संतोष- एकदम से रुपया लाना भी तो कठिन है।

बंगाली - तो अब आप जानो बाबूजी ! थोड़े से रुपयों के पीछे किए कराए परिश्रम पर पानी फिर जायगा। (हाथ से संकेत कर) और इतना बड़ा हण्डा आकर भी हाथ से निकल जायेगा। पाँच सौ रुपया और दे दें तो समझो कल ही काम हो जायेगा।

रमा- अभी तो तुम कह रहे थे कलकत्ता जाना पड़ेगा, पूजा-पाठ के लिए और पाँच सौ रुपए देने से कल ही काम हो जायेगा।

बंगाली - काली मैया से माफी माँग लेगे बहिनजी! काम करने के बाद कलकत्ता चला जाऊँगा। मैया तो घट-घट की जानती हैं।

रमा- भैया! हम भी गरीब है, कर्ज लेकर हमने तुम्हें रुपया दिया कि तुम्हारा दोंनो का काम बने। धोखा देने के लिए तुमने झूठी कसमें खाई। तुम्हारी धोखेबाजी नहीं देखी मैया ने ?

सन्तोष- भगवान से तो डरते। उसकी भी आँखों में धूल झोंकने में कसर नहीं रखी।

अशोक- इसीलिए भूखों मरते हो। जैसी नीयत वैसी बरक्कत। तुम लाखों लूटो पर सदा दरिद्र ही बने रहोगे।

पाँच सौ रुपया और चाहिए पूजा करने के लिए।

अलोक- अब तो तुम्हारी पूजा होनी चाहिये अच्छी खासी। शर्म नहीं आती। क्या अभी और कसर रह गई है लूटने में ? मक्कार कहीं का।

रमा- (गड्ढे में से रकाबी निकाकर) दो रुपट्टी की रकाबी रख कर हंडा दिखलाता हैं, इसीप्रकार अनेकों को लूटा और उल्टे उन्हें ही बदनाम किया।

संतोष- जान पहिचान का अच्छा फल दिया। तुम तो आस्तीन के साँप निकले। आदमी कितनी नीचता पर उतर आता है। मैं ऐसा नहीं समझता था तुम्हें।

आलोक- बोल ! हमारे रुपये कब दे रहा है ?

बंगाली - दे दूँगा भैया ! धीरे-धीरे दे दूँगा। मैं गरीब आदमी, मेरे पास रुपये कहाँ हैं ?

अशोक- एक सप्ताह में ही आठ सौ रुपए खा डाले ? जितने बचे हों, उतने ही दे दे।

बंगाली - (गिड़गिड़ाता हुआ) दो हजार रुपए कर्ज देना था। सो उस बनिये का सात सौ रुपया ही दे पाया। सौ रुपये घर खर्च में उठ गये।

आलोक- इसीलिए ठगता फिरता है सबको।

संतोष- ईमानदारों का जीवन जीना चाहिए। अपना जो

अगरबत्ती का व्यापार करते हो, वही मन लगाकर करो और अपनी नियत साफ रखो तो अपने आप पैसा आयेगा।

बंगाली- (संतोष के पैरों पर गिरकर) मुझे क्षमा कर दो बाबूजी ! मैं आपके रुपये कुछ दिनों में चुका दूँगा।

आलोक- तुम्हारी रिपोर्ट कर दें तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।

बंगाली- नहीं, नहीं भैया ! ऐसा मत करना, नहीं तो मेरे बीबी, बच्चे भूखों मर जायेंगे। तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ भैया ! क्षमा कर दो।

आलोक- चलो जाओ यहाँ से, काला मुँह करो। खबरदार ! जो कभी इस ओर रुख किया तो।

(बंगाली शीघ्रता से चला जाता है)

आलोक- बाबूजी ! रिपोर्ट कर देना ठीक होगा।

संतोष- पुलिस पैसे तो दिलाने से रही परन्तु दुनियाँ हमसे ही कहेगी कि पढ़े-लिखे चक्कर में आ गये।

रमा- हमारी तो यही हालत हुई कि 'भई गति साँप छछूंदर केरी. उगलत लीलत पीर घनेरी' रिपोर्ट करने से कोई लाभ नहीं, मुझे तो बार-बार यही अविवेक कोंच रहा है कि मैं इस अंधविश्वास में पड़ी ही क्यों ?

आलोक– माँ आप तो कहती हैं कि जो होना होता है, वही होता है।

रमा– हाँ बेटे! बात तो वही है पर अपनी अज्ञानता का दोष होनहार पर नहीं टाला जा सकता। जब हम जैसे शिक्षित जन भी बहक गये तो अशिक्षितों की क्या बात? वे रोज ही ठगाये जाते हैं।

संतोष– रमा! एक काम करो न। हमारे अनुभव का लाभ दूसरे ले सकें तो कितना अच्छा हो। इस घटना से जन साधारण अवगत हो जाये।

रमा– अति सुन्दर। दूर नहीं जाना हैं, अपने पड़ोस में वे राकेश भैया रहते हैं न उनसे कहूँगी कि इस घटना पर कोई नाटक-वाटक लिख दें तो अति उत्तम हो। बहुत से पाठक इस माया जाल से अपने परिवार को सुरक्षित बचा लेंगे।

संतोष– यह कही तुमने समझ की बात ।

रमा– तो मैं चलूँ राकेश भैया के पास। आज रविवार है, वे मिल भी जायेंगे ।

संतोष– शौक से जाओ पर अपने नाम को सुरक्षित रखना।

रमा– इससे आप निश्चिंत रहें। ध्यान रखूँगी जिससे साँप मरे न लाठी टूटे।

स्वाभिमान

पात्रानुक्रमणिका :

महाकीर्ति	– नगर नरेश
अदीति	– महामात्य, भूतपूर्व लकड़हारा
सुमतिचन्द्र	– न्यायाधीश
जयराज	– शासकीय अधिवक्ता
छत्रसिंह	– नगर रक्षक
भीमा	– सामान्य वणिक
माधवी	– न्यायाधीश की पत्नी
	एवं नागरिकगण

दृश्य-प्रथम

(न्यायाधीश सुमतिचन्द्र चिंतित मुद्रा में बैठे हैं। उनकी पत्नी माधवी आती है)

माधवी– अरे! अभी आप बैठे ही हैं, चलेंगे नहीं?

सुमतिचन्द्र– (खिन्न मन से) कहाँ?

माधवी– लो इतने शीघ्र भूल गए? पद्मा जी के पुत्र की वर्षगाँठ है। दिलीप बुलाने नहीं आया था?

सुमतिचन्द्र– ओह! मुझे ध्यान ही नहीं रहा। तुम्हीं चली जाओ न?

माधवी– आप क्यों नहीं चलेंगे? वातावरण के परिवर्तन से मन भी परिवर्तित हो जाता है।

मैं नहीं जा सकूँगा माधवी !

सुमतिचन्द्र- बहुत दिनों से देख रही हूँ, आप खोए-खोए से बने

माधवी- रहते हैं। कौन-सी चिंता लग गई है आपको ?

सुमतिचन्द्र- क्या करोगी सुनकर ?

माधवी- चिंता का निवारण न कर सकी तो चिंतित होकर आपका साथ तो दे ही दूँगी।

सुमतिचन्द्र- समस्या तो यथावत् बनी रहेगी।

माधवी- फिर भी बताने में हानि क्या है ? जब भी पूछती हूँ, आप टाल देते हैं।

सुमतिचन्द्र- आज तुम पीछे ही पड़ गई हो तो सुनो-चिंता का कारण महामात्य अदीति हैं।

माधवी- वे क्यों ? आप ही कहा करते थे कि उनके कारण राज्य समृद्ध हुआ है।

सुमतिचन्द्र- राज्य अवश्य सम्पन्न हुआ है किन्तु राज्य कर्मचारी विपन्न होते जा रहे हैं। अति कदापि अच्छी नहीं होती।

माधवी- अच्छे कार्यों में अति मंगलदायिनी होती है। अच्छाई का विपन्नता से क्या सम्बन्ध ? क्या आपने सबके वेतनों में कटौती कर दी है।

सुमतिचन्द्र- कटौती क्यों करेंगे किन्तु अतिरिक्त आय के समस्त

माधवी- इसमें चिंता की क्या बात ? कोई भूखे थोड़े ही रह रहे हैं।

सुमतिचन्द्र- (चिढ़कर) तुम्हें क्यों चिंता होगी ? रहन-सहन का स्तर तो हमें सँभालना पड़ता है।

माधवी- स्तर तो प्रदर्शन है। इससे किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता, मात्र अहं पुष्ट होता है।

सुमतिचन्द्र- (खिसिया कर) प्रदर्शन न हो तो कौन पूछेगा ? दुनियाँ वैभव को सम्मान देती है।

माधवी- **वैभव से व्यक्ति सीमित क्षेत्र एवं परिचितों में ही सम्मान पाता है जबकि गुणी सर्वत्र चर्चित और पर्चित होते हैं।**

सुमतिचन्द्र- विसंवाद करके तुम मेरी चिंता का अवश्य निवारण कर दोगी।

माधवी- मेरे वचन ही आपको विसंवादपूर्ण लगते हैं तो मैं क्या करूँ ? मैं तो समझती हूँ कि महामात्य को दोष देना सर्वथा अनुचित है।

सुमतिचन्द्र- (समझाते हुए) तुम क्या जानो ? उनके कारण ही राज्य में सर्वत्र अनुशासन व्याप्त है। अधिकार की महत्ता समाप्त हो गई है। नागरिकों में कर्त्तव्य के प्रति आदर और अधिकार के प्रति उपेक्षा हो गई है।

माधवी- अत्यन्त मंगलप्रद है यह। आपको कार्य अधिक नहीं करना पड़ेगा।

सुमतिचन्द्र- तुम्हारी बुद्धि विपरीत चलती है। अरे! विवाद निपटाने में दोनों पक्षों से शिखरिणी[1] प्राप्त होती थी, जो अब बन्द हो गई।

माधवी- मेरी मानो, व्यर्थ की चिन्ता छोड़; आनन्द से रहो। **न्याय की रोटी में जो सुख है, वह रिश्वत के रक्त- पान में नहीं है।** (कहते-कहते चली जाती है)

सुमतिचंद्र - (स्वगत) नारियों की बुद्धि अत्यन्त कुण्ठित होती है। उनकी कोई महत्त्वाकांक्षा भी नहीं रहती।.. रात्रि होने को आ गई पर वे दोनों अभी तक नहीं आए। (उठकर द्वार तक जाते हैं कि अधिवक्ता जयराज एवं नगर रक्षक छत्रसिंह आते हुए दिखाई देते हैं, वे प्रसन्न हो जाते हैं। तीनों परस्पर अभिवादन करते हैं)

जयराज- क्षमा करें महोदय! विलंब हो गया।

सुमतिचंद्र- कोई बात नहीं, आयें विराजें। (तीनों आसंदियों पर बैठ जाते हैं)

जयराज- (ललाट पर आये स्वेद बिन्दुओं को उँगलियों से छिटकते हुए) इस परिस्थिति में संतुलन बनाए रखना अत्यन्त कठिन हो गया है।

1. रिश्वत

सुमतिचन्द्र- अधिकार एवं पद की गरिमा को देखते हुए द्रव्य नितांत आवश्यक है।

जयराज- वेतन केवल दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अतिरिक्त आय के अभाव में शेष कार्य हो ही नहीं सकते।

छत्रसिंह- वेतन की निश्चित राशि में मेरे विशाल कुटुम्ब का भरण- पोषण भी दुर्लभ हो गया है।

सुमतिचन्द्र- न्यायालय में काग बोलने लगे हैं। छोटे-मोटे अपराधी ही भूले-भटके वहाँ आ जाते हैं। जाने कौन-सा मन्त्र फूँक दिया है उन्होनें।

छत्रसिंह- कलह, विसंवाद नगण्य हो गए हैं।

जयराज- कोई बिरले होते भी हैं, जिनसे विशेष उपलब्धि हो सकती है तो ऐसे विवादग्रस्त विषय मंत्री महोदय स्वयं निपटाने लगे हैं।

सुमतिचन्द्र- इसीलिए उन्होंने एक अतिरिक्त न्याय विभाग खोल लिया है। न्यायालय नाम के लिए रह गया है।

छत्रसिंह- जाने उन्हें कैसे इतना अवकाश मिल जाता है।

जयराज- उन्हें कार्य ही क्या है? न पत्नी, न बच्चे, अकेले ठूंठ हैं।

सुमतिचन्द्र- ये आप ने खूब कही। (हँसकर) पकड़कर विवाह कर दो। बस चार दिन में सब न्याय भूल जायेंगे।

छत्रसिंह- आप तो परिहास कर रहे हैं। मुझे ये आश्चर्य होता है कि वादी-प्रतिवादी कितने भी रोष से भरे हों परन्तु न्याय पाकर मंत्रीजी के कक्ष से निकल कर प्रसन्न मन मित्रों की भाँति चल देते हैं।

जयराज - **हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाय।** द्रव्य की भी बचत और समय की भी बचत। आज ही प्रार्थना, आज ही न्याय, प्रसन्नता होगी ही।

सुमतिचंद्र- न्यायालयों में आने पर प्रतिहार से लेकर अधिवक्ता, न्यायाधीश सभी को दक्षिणा चढ़ानी पड़ती थी, अब किसी से प्रयोजन नहीं। इस स्थिति में हम आपकी क्या निबाहें? पहले मैंने आप दोनों की बात कभी नहीं टाली। आपकी इच्छानुसार निर्णय दिया, जबकि अन्यायी को न्यायी बनाने में कठिन परिश्रम करना पड़ता था।

छत्रसिंह- इसी की दक्षिणा मिलती थी। सत्य पर आधारित पक्ष सत्य प्रबल है, उसे उत्कोच की वैसाखियों की क्या आवश्यकता?

जयराज - सब शासकीय कर्मचारी उनके नाम को रोते हैं। यहाँ तक कि उनके निवास स्थान का प्रहरी भी।

सुमतिचन्द्र- क्यों उसे क्या कष्ट है?

जयराज- जो हम सबको है। वेतन के अतिरिक्त दक्षिणा में कभी एक ताँबे की मुद्रा भी प्राप्त नहीं होती बेचारे को।

छत्रसिंह - हो कैसे? दीनबन्धु मंत्री महोदय का द्वार सदैव खुला है फिर प्रहरी को कौन पूछे? उन्होंने सबके पेट पर लात मारी है। हम सब तो जीवित ही मृत से हो गए हैं।

सुमतिचंद्र- अब सब एक ही तुला पर तुल रहे हैं। हम थे कि अपराधिक का व्यवहारिक, सामाजिक स्तर देख उसका मूल्यांकन करते थे। राई से अपराध को ताड़ बनाने की हमारी अपनी कला थी। अब सब कलायें झख मार रही हैं।

छत्रसिंह- निश्चय ही आप सिद्ध-हस्त न्यायाधीश हैं।

जयराज - श्रीमान् जी! आपने अपराधियों को विभाजित किया था किन्तु हमारे मंत्री महोदय ने अपराधों का विभाजन किया है। **उनकी आँखें अपराध पर टिकती हैं, अपराधी पर नहीं।**

सुमतिचन्द्र- हाँ, उसका मन-मस्तिष्क सब एक होकर अपराध पर विचार करता है, वे अपराधी से विशेष प्रयोजन नहीं रखते! कोई युक्ति निकालो ताकि समस्या सुलझ सके, इस व्यर्थ की चर्चा में समय नष्ट करने से क्या लाभ?

जयराज - एक ही युक्ति है-येन-केन-प्रकारेण अमात्य अदीति पर कोई अपराध मढ़ दिया जाए।

सुमतिचंद्र- वे महाराज के अत्यंत विश्वासपात्र हैं। महाराज की विमुखता अपना कार्य सिद्ध कर सकती है अन्यथा कोई मार्ग नहीं। अधिवक्ता आर्य जयराज! आप ही कोई युक्ति खोजें।

जयराज - सहर्ष स्वीकार है। मैं युक्ति बता सकता हूँ, कार्यान्वित नगर रक्षक आर्य छत्रसिंह करें।

छत्रसिंह- प्रस्तुत हूँ, आदेश दें, मुझे क्या करना होगा?

जयराज - विचार कर बतलाऊँगा। बस उन्हें किसी प्रकार अपराधी घोषित करना है।

सुमतिचन्द्र- (प्रसन्न हो) इसके आगे की कार्यवाही मुझे ही करना होगी। फिर देखें अदीति की कौन रक्षा कर सकता है?

छत्रसिंह - मार्ग का कंटक हटा कि पांचों उंगलियाँ घी में।

जयराज- (खड़े होकर) रात्रि अधिक हो रही है, अब हम चलें। कल संध्या हम तीनों पुन: मिलकर विचार करेंगे। (सुमतिचन्द्र से) आपको कोई आपत्ति तो नहीं?

सुमतिचन्द्र- नहीं, मुझे प्रसन्नता होगी।

(परस्पर अभिवादन कर दोनों का प्रस्थान)

दृश्य-द्वितीय

समय - मध्याह्न

स्थान- नरेश महाकीर्ति का अंतर्कक्ष

(नृपति महाकीर्ति एवं छत्रसिंह में वार्तालाप चल रहा है। विषय है महाकीर्ति की नवरत्न की खोई मुद्रिका। एक सप्ताह से महाराज अत्यन्त चिंतित हैं)

महाकीर्ति- (रोष में) छत्रसिंह? एक सप्ताह हो गया मुद्रिका खोए हुए और तुम अभी तक पता न लगा सके। तुम्हारा विभाग क्या सो रहा है?

छत्रसिंह - (सहमते हुए) श्रीमान्! नगर में एवं सीमाओं पर गुप्तचर कार्यरत हैं परन्तु दु:ख है कि पता न लग सका।

महाकीर्ति- उस मुद्रिका का मूल्य हमारी दृष्टि में इसलिए भी अधिक है कि वह पिताजी ने हमें अंतिम समय में भेंट दी थी। हम उनकी स्मृति स्वरूप सदैव धारण किये रहते थे।

छत्रसिंह- सभी दृष्टि से मुद्रिका मूल्यवान है प्रजापति किन्तु क्या करूँ? अनवरत प्रयत्न करते हुए भी सफलता नहीं मिली। आप हैं स्वामी, मैं हूँ सेवक, आप चाहे जो दण्ड दें, नि:सन्देह मैं दण्ड का पात्र हूँ।

महाकीर्ति- दण्डित करने से क्या मुद्रिका मिल जाएगी? हमें तो मुद्रिका इष्ट है!

छत्रसिंह– क्षमा करें महाराज! सब स्थान खोजे जा चुके हैं पर एक स्थान अभी भी अवशेष है जो मेरी पहुँच के बाहर है, जहाँ पक्षी भी पर नहीं मार सकते।

महाकीर्ति– (क्रोधित हो) बहाना मत बनाओ छत्रसिंह! तुम्हें सर्वत्र जाने का अधिकार है। वह कौन-सा ऐसा स्थान है, जहाँ तुम नहीं जा सकते?

छत्रसिंह– श्रीमान्! अधिकार होते हुए भी उसका उपयोग करने में हृदय काँपता है।

महाकीर्ति– अतिविचित्र बात है। बतलाओ, हम स्वयं चलकर अपनी मुद्रिका प्राप्त करेंगे।

छत्रसिंह– धृष्टता क्षमा करें देव! मुझे आशंका है कि श्रीमान् के अत्यन्त विश्वासपात्र प्रिय व्यक्ति ही अपराधी हो सकते हैं?

महाकीर्ति – (आवेश में) तुम्हारा अभिप्राय किस व्यक्ति से है? तुम निर्भीक होकर कह सकते हो। दोषी दण्ड का पात्र है, चाहे वे महारानी ही क्यों न हों?

छत्रसिंह– नहीं, नहीं महाराज! ऐसा न कहें।

महाकीर्ति– (किंचित् शान्त हो) बतलाओ हम तुम्हें अभय करते हैं।

छत्रसिंह– मुझे प्राणों का भय नहीं अन्नदाता। हम कर्मचारी प्राण हथेली पर लेकर चलते हैं। पर.......

महाकीर्ति– पर क्या? निस्संकोच कहो।

छत्रसिंह– महाराज! मुझे वह चिन्ता सता रही है कि आपके हृदय पर आघात न हो।

महाकीर्ति– हमारा हृदय छुई-मुई नहीं कि सुनते ही आहत हो जाए।

छत्रसिंह– महाराज! मंत्री महोदय का यह कार्य प्रतीत होता है।

महाकीर्ति– (अत्यन्त उत्तेजित हो) चुप रहो छत्रसिंह! महामात्य का नाम पुनः लिया तो जिह्वा काट ली जायेगी।

छत्रसिंह– इसीलिए कहने का साहस नहीं होता था महाराज! अब मौन भी कब तक रहूँ? जबकि चप्पा-चप्पा खोजा जा चुका है।

महाकीर्ति– इसका अर्थ यह नहीं कि तस्कर पकड़ में न आये तो किसी सज्जन को शूली पर चढ़ा दिया जाए।

छत्रसिंह– यह काल्पनिक है राजन्! चन्द दिनों से मंत्री महोदय की गतिविधि संदिग्ध चल रही है!

महाकीर्ति– वाणी को संयमित करो छत्रसिंह! महामात्य जैसे निश्छल व्यक्ति बिरले ही होते हैं। केवल हमें ही नहीं, सम्पूर्ण राज्य को उन पर गर्व है। यह हमारा सौभाग्य है जो हमें उनकी मंत्रणा प्राप्त हो रही है।

छत्रसिंह– मैं मानता हूँ महाराज! पर क्या यह सम्भव नहीं कि अब वे इसी विश्वास का लाभ ले रहे हों?

महाकीर्ति- उस विशाल व्यक्तित्व पर इतना बड़ा लाँछन किस आधार पर लगा रहे हो ?

छत्रसिंह- मैंने निवेदन किया न महाराज ! कि उनकी गतिविधि चन्द दिनों से सन्देहास्पद है। मैं नियमित उन्हें परख रहा हूँ महाराज ! वैभव का आकर्षण इतना विलक्षण है कि कभी-कभी वनवासी तपस्वी सन्त भी सहन नहीं कर पाते।

महाकीर्ति- क्या देखा तुमने ?

छत्रसिंह- मंत्रीजी प्रतिदिन संध्या समय अपनी पुरानी कुटिया में जाते हैं एवं चन्द समय पश्चात् अपने आवास में लौट आते हैं।

महाकीर्ति- बस इतनी सी बात पर तुम अनुमान लगा रहे हो। इसे प्रमाणित नहीं कह सकते। मान लो उन्होंने मुद्रिका ली भी तो इतनी बहुमूल्य वस्तु उस असुरक्षित कुटिया में क्यों रखेंगे ?

छत्रसिंह- यही तो विशेषता है उनकी। कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि मुद्रिका वहाँ होगी। यदि यह सत्य नहीं है तो वे क्यों जाते हैं ? क्या रखा है उस मिट्टी की कुटिया में ?

महाकीर्ति- (गम्भीर मुद्रा में विचार मग्न हो जाते हैं।)

छत्रसिंह- (अपनी बात को पुष्ट करते हुए) महाराज यही संदेह की पृष्ठभूमि है। आप ही इसका निराकरण कर संदेह का निवारण कर सकते हैं।

महाकीर्ति- विचार करेंगे, तुम बाहर बैठो। अमात्य अदीति आते होंगे।

छत्रसिंह- आपके आदेश की प्रतीक्षा करूँगा महाभाग ! (प्रस्थान)

महाकीर्ति- (स्वगत) मानव की वृत्ति कितनी विचित्र है ? लकड़हारा मंत्री पद का कब तक निर्वाह करेगा ? कृतघ्न अदीति ! सच है मानव जिसके आधार से ऊपर चढ़ता है, चढ़ने के पश्चात् उसे ठोकर मारकर गिराने में तनिक भी संकोच नहीं करता। पिताजी ने कहा था कि यह मुद्रिका सर्व संकट नाशक है, इसे सदैव अंग में धारण किए रहना सच है जब से खोई है तब से विपत्तियाँ घेरे हुए हैं......।

(नगर में आँधी की भाँति यह समाचार फैल जाता है कि महामात्य अदीति ने महाराज की मुद्रिका चुराई है पर इससे अनभिज्ञ आर्य अदीति आकर अभिवादन करते हैं परन्तु महाराज प्रतिदिन की भाँति प्रसन्न मन से उन्हें प्रत्युत्तर नहीं देते।)

अदीति- राजन् ! आज खिन्नता का कौन-सा कारण आ पड़ा

है ? मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें।

महाकीर्ति– अमात्य अदीति। हमारी मुद्रिका को खोए हुए पूरा सप्ताह बीत गया पर आज तक उस का पता न लग सका। वह हमारी पिताजी की प्रतीक स्वरूप थी। नवरत्न की मुद्रिका जबसे हमने धारण की थी तब से कोई विघ्न बाधा नहीं आई।

अदीति– प्रयत्न उसी दिन से कर रहा हूँ श्रीमान् ! परन्तु सफलता नहीं मिली। चन्द दिन और धैर्य रखें ! पता लगाकर ही रहूँगा।

महाकीर्ति– असम्भव है महामात्य! किसी अपरिचित का अत्यधिक विश्वास कर लेना भी राज्यधर्म में दोष स्वरूप माना है। हमें इसका कटुफल मिलना अब प्रारम्भ हो गया है।

अदीति– महाराज अनजाने में होने वाली भूल या भूल का भ्रम भी अधिकांशत: संदेह की सृष्टि कर देता है।

महाकीर्ति– आर्य अदीति! पग–तल से उड़ती हुई धूल जब व्यक्ति के माथे पर चढ़ने का सौभाग्य पा जाती है तब फिर वह अभिमान से भर आँखों में बैठने की भी धृष्टता करने से नहीं चूकती।

अदीति– **धूल स्वभाव से ही खोटी है किन्तु डाल पर लगा**

फूल वन या उपवन में कहीं भी हो, बिना किसी भेद के समान सुरभि बिखेरता है राजन्! मसलने पर उसकी सुगन्ध और भी कई गुनी हो महक उठती है।

महाकीर्ति– धूल फूल नहीं है अमात्य !

अदीति – फूल को धूल समझना भी अन्याय है महाराज ! स्पष्टत: आपका संकेत मेरी ओर ही है।

महाकीर्ति– अनुमान यथार्थ है आपका। आपको राज्य के प्रमुख पद पर आसीन कर हम कहीं चूक कर गये हैं।

अदीति– तब मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर आप भूल में संशोधन कर लें। इतना निवेदन अवश्य है कि अभी तक मैंने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह निष्ठा पूर्वक किया है।

महाकीर्ति– किया होगा, पर अब नहीं।

अदीति– (गम्भीर स्वर में) महाराज! मिथ्या आरोप को मैं कदापि स्वीकार नहीं करता।

महाकीर्ति– अपराधी अपराध को कब स्वीकार करते हैं ?

अदीति– प्रतीत होता है कि भ्रमवश आप मुझे चोर समझ बैठे हैं? परन्तु ऐसा जघन्य कर्म मेरी कल्पना से भी परे है राजन्!

महाकीर्ति– यह भ्रम नहीं यथार्थ है महामात्य! हम सोच–

समझकर ही इस निर्णय पर पहुँचे हैं। भली–भाँति स्मरण है, मुद्रिका ज्योतिषी को दिखाई थी तब आपने भी देखी थी पर हमें लौटाई नहीं गई।

अदीति– महाराज! यह बात मुद्रिका खोने के दो दिन पूर्व की है।

महाकीर्ति– नहीं, हमें दो दिन के पश्चात् सुधि आई है। इस घटना का स्मरण तो अनायास आज आया है।

अदीति– जब आपका हृदय ही अविश्वास कर चुका है तब फिर अन्य कोई उपाय शेष नहीं, जिससे मैं अविश्वास को विश्वास में परिवर्तित कर सकूँ। (दीर्घ उच्छ्वास से) मैं उपस्थित हूँ, आप दण्ड दें।

महाकीर्ति– हम आपके निवास स्थान का निरीक्षण करना चाहते हैं।

अदीति– प्रेम पूर्वक करें श्रीमान्! भवन आपका है, मेरा नहीं।

महाकीर्ति– भवन का नहीं, आपकी कुटिया का निरीक्षण करेंगे।

अदीति– (आश्चर्यान्वित हो) कुटिया का? राजन् ऐसा कौन जड़ बुद्धि होगा जो इतनी बहुमूल्य मुद्रिका चुराकर माटी की कुटिया में रखेगा। उसकी भित्तियाँ इतनी कच्ची हैं कि बलशाली के पाद प्रहार से ही वे ढह सकती हैं।

महाकीर्ति– यही रहस्य तो आपको निश्चिंत किए हुए है।

अदीति– (दृढ़ता पूर्वक) नहीं राजन्? मुझ पर दोषारोपण

अनुचित है। मेरी कुटिया आपकी मुद्रिका को अपने गर्भ में रखने में सर्वथा असमर्थ है।

महाकीर्ति– तब फिर विलंब क्यों? निरीक्षण कर हमें समाधान मिल जाएगा।

अदीति– श्रम निष्फल होगा श्रीमान्! आप पश्चाताप करेंगे।

महाकीर्ति– इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

अदीति– परन्तु मेरा कुटिया में कुछ नहीं है राजन्! लक्ष्मी तो मुझसे सदैव रूठी रही है।

महाकीर्ति– इसीलिए उसे मनाने की युक्ति का आपने आविष्कार कर लिया है।

अदीति– नहीं महाराज! आप यह न भूलें कि सरस्वती का उपासक उलूकवाहिनी की छलना में आ अपनी उपासना को धूमिल नहीं करता।

महाकीर्ति– यह सब वाग्विलास है अदीति! प्रपञ्च से हम भलीभाँति अवगत हैं। शीघ्र चलो, हम एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करना चाहते।

अदीति– (अत्यन्त व्यथित हो) मुझ पर विश्वास कर आप अपने वचन लौटा लें। ये मेरा स्वाभिमान का प्रश्न है। इस अपमान से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

महाकीर्ति- अपमान समझते हो तो मुद्रिका दे दें।

अदीति- मेरे पास होती तो अवश्य दे देता राजन्? भरे हाट लुटते भला किसे भला लगता है?

महाकीर्ति- आर्य अदीति! हमें आप इतने प्रिय थे कि आपके तनिक से संकेत पर हम रत्नों की राशि प्रस्तुत कर देते पर आपकी इस एक भूल ने आज तक के संचित विश्वास को भी नष्ट कर दिया।

अदीति- राजन्। रत्नों का क्या करूँगा? मैं अकेला व्यक्ति न मेरी पत्नी, न बालक, माता-पिता का बहुत पहले स्वर्गवास हो गया, यह नियति थी कि मुझे अनायास राज्य में विशिष्ट पद मिल गया। न्यायोचित कार्य करने में कुछ संतोष था। तन की आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है। संचय करूँ तो किसके लिए?

महाकीर्ति- निस्सन्देह आपके विचार उत्तम हैं। आप निस्पृही हैं तो कुटिया के निरीक्षण में व्यवधान क्यों कर रहे हैं?

अदीति- राजन्! (दु:खित हो) आपको कैसे बताऊँ? जीवन की संचित पूँजी मेरा स्वाभिमान कपूर की भाँति उड़ाने पर क्यों तुल गए हैं? (विनीत स्वर में) महाराज! यह विचार त्याग मेरी लाज रख लें, जन्म-जन्म आपका कृतज्ञ रहूँगा।

महाकीर्ति- (कठोर स्वर में) अदीति! हमारा समय नष्ट मत करो, इसी समय चलो।

अदीति- राजन्! मैं आपसे पुन:-पुन: क्षमा याचना करता हूँ। (चरण पकड़कर) मेरी लाज रख लें श्रीमान्!

महाकीर्ति- (शीघ्रता से पैर हटाते हुए) ये सब ढोंग बन्द करो अदीति! तुम्हारी सारी बातों से अपराध की ही पुष्टि होती है। जब किया नहीं तो डर क्यों?

अदीति- (सजल नयन कातर स्वर से) मैंने चोरी नहीं की महाराज! मैं चोर नहीं हूँ, मैं चोर नहीं। (वचन अवरुद्ध हो जाते हैं)

महाकीर्ति- (उच्च स्वर से) छत्रसिंह!

छत्रसिंह- (तुरन्त प्रवेश कर) आज्ञा प्रजापति!

महाकीर्ति- महामात्य की कुटिया तक चलना है। शीघ्रता करो।

छत्रसिंह- हम सब सहर्ष हैं महाराज! अंगरक्षक बाहर प्रतीक्षारत हैं। (छत्रसिंह अदीति की ओर देखकर कुटिलता से मुस्करा देता है। आर्य अदीति नतमस्तक खड़े हैं। महाकीर्ति के साथ अदीति, अंगरक्षक, छत्रसिंह, चन्द राज्य कर्मचारी चल पड़ते हैं। कौतूहली प्रजा भी साथ हो जाती है। भीड़ में कोई धिक्कारता है अदीति को, तो कोई सम्मान

प्रदर्शित कर रहा है, जनप्रिय नेता के प्रति प्रजा की सहानुभूति भी उमड़ रही है।) मार्ग में-

पहला व्यक्ति-क्यों बन्धु ये क्या हो रहा है ?

दूसरा व्यक्ति-तुम्हें नहीं मालूम ? महामात्य के घर की छानबीन होनी है।

पहला व्यक्ति-क्यों भला ?

दूसरा व्यक्ति-अपने महाराज की अँगूठी खो गई है।

तीसरा व्यक्ति-तो क्या महामात्य ने ले ली है ?

दूसरा व्यक्ति-सन्देह तो उन्हीं पर है।

पहला व्यक्ति-जिस पत्तल में खाया, उसी में छिद्र करते उन्हें लज्जा नहीं आई।

दूसरा व्यक्ति-अज्ञात कुलशील व्यक्ति का विश्वास करने का यही कुफल है। महामात्य के पद पर आसीन होने से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता। जन्म के तो वे लकड़हारे ही थे।

तीसरा व्यक्ति-महामात्य जैसे न्यायप्रिय मानव से ऐसा जघन्य कृत्य होना सर्वथा असम्भव है।

दूसरा व्यक्ति-धन के आकर्षण में बड़े-बड़े फिसल जाते हैं और फिर इतने प्रतिष्ठित पद पर पहुँच कर धन की भूख न लगे ? बन्धु संयमी रहना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य है।

चौथा व्यक्ति-महामात्य मानव नहीं देवता हैं। यह किसी का षड्यन्त्र होगा।

तीसरा व्यक्ति-निश्चित ही उन्हें फँसाया गया है।

दूसरा व्यक्ति-उन्हीं को क्यों ? किसी और को भी फँसाया जा सकता था ?

चौथा व्यक्ति-और को क्यों फँसाते ? जिसके कारण राज्य कर्मचारियों की दाल नहीं गलती थी, वे ही दोषारोपण कर अपना मार्ग निष्कंटक करना चाहते हैं।

तीसरा व्यक्ति-प्रजा के कितने हितैषी हैं वे, इनके मंत्रित्व काल में प्रजा सुख सम्पन्न सन्तुष्ट रही।

(कुटिया आ जाती है। महामात्य आर्य अदीति अपराधी की याचक दृष्टि से महाकीर्ति की ओर एक-क्षण देखते हैं। मानो याचना कर रहे हैं कि कुटिया के द्वार बन्द रहने दिये जायें ताकि मेरी लाज सुरक्षित रह सके)

महाकीर्ति- तुम्हीं अपने हाथों द्वार खोलो अदीति। (अदीति द्वार खोलकर एक ओर नतमस्तक खड़े हो जाते हैं। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। महाकीर्ति, अंगरक्षक, छत्रसिंह दो कर्मचारियों सहित कुटिया में प्रविष्ट होते हैं। भीड़ बाहर खड़ी

रहती है। कुटिया के एक कोने में कतिपय पुराने बर्तन रखे हैं। एक ओर एक छोटी-सी पोटली है, उसके निकट ही एक हंसिया, कुल्हाड़ी व रस्सी पड़ी है। छत्रसिंह व दो कर्मचारी एक-एक बर्तन उठाकर देखते हैं। मुद्रिका नहीं मिलती)

छत्रसिंह- इसमें मुद्रिका नहीं है महाराज! महामात्य! कृपया अब बतला दें अंगूठी कहाँ रखी है?

(अदीति मौन हैं)

महाकीर्ति- तुम पोटली खोलो छत्रसिंह! सावधानी से देखो। (छत्रसिंह पोटली खोलता है, उसमें फटे-पुराने दो अंगरखे तथा दो कटिवस्त्र हैं। एक बिछाने की कथरी एवं ओढ़ने का चादर भी संभाल कर रखे हैं। एक-एक वस्त्र खोलकर, देखकर रख देता है।

महाकीर्ति- (क्रोध में) क्यों इसमें भी मुद्रिका नहीं निकली छत्रसिंह।

छत्रसिंह- नहीं अन्नदाता! (कर्मचारी कुल्हाड़ी आदि वस्तुएँ हटाकर देखते हैं)

कर्मचारी- अब भित्तियों के अतिरिक्त यहाँ देखने योग्य कुछ है ही नहीं, जहाँ मुद्रिका की खोज की जाए?

महाकीर्ति- छत्रसिंह! तुम्हारी मिथ्या सूचना पर विश्वास कर हमने उचित नहीं किया।

अदीति- (फफककर रो पड़ते हैं) जैसे वैगवती नदी की धारा का बाँध अनायास फूट पड़ा हो) लुट गया राजन्! मैं लुट गया। आपकी मुद्रिका नहीं मिली परन्तु मेरे जीवन की चिर संचित पूँजी मेरी लाज, मेरा स्वाभिमान, मेरे देखते-देखते नीलाम कर दिया गया। आपने सबके सम्मुख मुझे नंगा करके छोड़ा महाराज!

छत्रसिंह - (घबराकर) महाराज! मैं एक सप्ताह से प्रतिदिन ही महामात्य को यहाँ आते देख रहा था। वे चन्द समय यहाँ रुकते भी थे। मुझे शंका हुई कि ....

महाकीर्ति - (वाक्य पूर्ति करते हुए) महामात्य चोर हैं, यही न? निश्चित ही तुम्हारा षड्यन्त्र था।

छत्रसिंह- नहीं महाराज! मैं क्यों षड्यन्त्र करूँगा? यहाँ पर आना ही सन्देह की सृष्टि करता था।

अदीति- तुम्हारी रपट असत्य है। मुझे दस वर्ष हो गए मंत्रिपद ग्रहण किए किन्तु अपना घर जहाँ मैंने संस्कारों को सुदृढ़ कर जीवन को निखारा है।

महाकीर्ति - ओह! यह विभूति थी, जिसे आप प्रतिदिन सहेजते रहे।

अदीति- इस कुटिया का कण-कण मुझे स्फूर्ति देता था राजन! मुझे तृप्ति उपलब्ध होती थी। मेरे फटे-पुराने

वस्त्र- बर्तन। मुझे आजीविका प्रदान करने वाली कुल्हाड़ी, रस्सी सभी मानसिक सन्तुलन बनाए रखने में सहायक थे। **पद का अहंकार कहीं मुझे कर्त्तव्य से भ्रष्ट न कर दे, अतः प्रतिदिन मंदिर में आकर अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करना अनिवार्य था।**

महाकीर्ति- पर विगत सप्ताह से ही आपको यहाँ देखा गया है।

अदीति- नहीं, (दृढ़ता पूर्वक) एक सप्ताह से शंकालुदृष्टि देखती रही है।

महाकीर्ति- धन्य है आपको। हमारी तनिक-सी असावधानी से कैसा अनर्थ घट गया है। आपको कितनी मर्मान्तक पीड़ा हुई, वह अकल्पनीय है। हमें क्षमा करें महामात्य!

अदीति- आपको क्षमा कैसी? आप तो भूपति हैं, मेरे पूज्य हैं। काश! मैं स्वतः को क्षमा कर सका तो अत्युत्तम होगा। राजन्! **अर्थ की दुनियाँ में ही अनर्थ घटा करते हैं। ये कोई अनहोनी नहीं हुई है।**

महाकीर्ति- आपके विचार महान हैं। सर्व साधारण का उनमें प्रवेश नहीं । भवन में चलें, विलंब हो रहा है।

अदीति- क्षमा करें राजन्! मेरा सदन तो यही है। अनुचित पथ

अपनाने पर इतना दण्ड ही पर्याप्त है। बौना अपनी क्षमता को दृष्टि से ओझल कर गिरीशृङ्ग[1] का उल्लंघन करेगा तो उपहास का पात्र होगा ही ।

महाकीर्ति- नहीं, नहीं, यह कथन उपयुक्त नहीं है महामात्य! आप महान हैं। आपके कार्यकाल में प्रत्येक क्षेत्र में राज्य उन्नत हुआ है। प्रजा आपको प्राणों से भी अधिक चाहती है। अपना कार्यभार आपको संभालना ही होगा। अपनी भूल पर हम शर्मिंदा हैं। मंत्रि पद की महत्ता आपसे ही है आर्य!

अदीति- भूल आपकी नहीं, मेरी है राजन्! जिस निष्ठा से आपके व राज्य के प्रति मैंने स्वयं को समर्पित किया, उतनी निष्ठापूर्वक यदि आत्मसमर्पण किया होता तो सर्व बन्धनों से समस्त आरोपों से मुक्त हो निर्दोष निरंजन हो जाता। व्यर्थ के श्रम से आत्मा की तो क्षति ही हुई है।

महाकीर्ति- यह अत्यन्त उच्च कोटि की भूमिका है आर्य अदीति! हम गृहस्थ हैं एवं गृहस्थ भूमिका का निर्वाह करना है।

अदीति- वह भी देख लिया राजन्! धुले हुए कोयले से भी

1. पर्वत की शिखर

स्पर्शित वस्तु मलिन हुए बिना नहीं रहती। न्याय का पक्ष लेते ही अन्यायी का रोष उभर आता है। **न्याय के प्रति प्रेम और अन्याय के प्रति आक्रोश दोनों ही आदरास्पद नहीं हैं। पक्ष-प्रतिपक्ष का आग्रह छोड़ निष्पक्ष, परम स्वच्छ, निर्द्वन्द्व आनन्द का अनुभव ही श्रेयस्कर है।** (महाराज! की आवाज आते ही सबका ध्यान बँट जाता है। क्या देखते हैं कि एक व्यक्ति द्रुतगति से भीड़ को चीरता हुआ चला आ रहा है। उसका नाम है भीमा। वह साधारण वणिक है। उसके साथ दो सज्जन और आ रहे हैं)

भीमा- महाराज! ये मुद्रिका मेरे आँगन में पड़ी मिली है। (मुद्रिका दे देता है)

महाकीर्ति- खोई हुई मुद्रिका यही है।

छत्रसिंह- (तुरन्त) यही चोर है महाराज!

भीमा- (घबराकर) मैं चोर नहीं महाराज! आप इन पड़ोसियों से पूछ लें। एक माह में परदेश से अभी-अभी लौटा हूँ। द्वार खोलते ही आँगन में ये अँगूठी देखी! तुरन्त पड़ोसियों को बुलाकर दिखलाई।

पहला पड़ोसी-चमकीले नग देख हमें ऐसा लगा कि कहीं यही मुद्रिका आपकी न हो।

भीमा- मैंने सुना कि महामात्य पर अभियोग आ रहा है। मुझे बहुत दुःख हुआ। कदाचित् यह अँगूठी आपकी हुई तो प्रजावत्सल महामात्य निर्दोष सिद्ध हो सकेंगे। बस मैं सिर पर पैर रखकर भागा।

महाकीर्ति- (पश्चात्ताप करते हुए) वे तो पहिले ही निर्दोष सिद्ध हो चुके हैं। दोषी तो हम हैं। **हमने जड़ वस्तु रत्न मुद्रिका के लोभ से सबका परम हितैषी दुर्लभ मानव रत्न खो दिया!** यह हमारे जीवन की बृहत्तर अक्षम्य भूल हो गई।

अदीति- आप मन में ग्लानि न रखें। यह घटना मंगलमय है। मेरी आँखें खुल गईं। मेरे जीवन का यह प्रभातकाल है। वीतरागता की सुखद छाँह के दर्शन हुए हैं। ये क्षण कितने पावन हैं राजन्!

महाकीर्ति- हमारी तो जैसे बाँह ही टूट गई आर्य! कितने अशुभ क्षण थे वे, जब हमारा मन आपके प्रति अविश्वास से भर उठा। (अनायास आवेश में आ) छत्रसिंह! तुम हो दण्ड के पात्र! तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा। रक्षकों बन्दी बना दो इसे!

छत्रसिंह- (भयातुर हो) राजन्! मैं नहीं, मेरे पीछे षड्यन्त्रकारियों की लम्बी कतार है। मैं तो मात्र शतरंज का मोहरा

था, जो पिट गया।

महाकीर्ति– कौन है अन्यायी, अत्याचारी, धूर्त ?

अदीति – शान्त हों श्रीमान्! दोष किसी का नहीं, ये कषाय आदि विषैले भावों की चाल है। जो समझ जाता है वह बच जाता है अन्यथा फँसने में देर नहीं लगती। **विकारों के आवरण के पार तो सब आत्मायें समान स्वच्छता लिए हैं अतएव अपराधी दया, क्षमा के पात्र हैं। सबको परिमार्जन का शुभावसर प्रदान करें; इसीमें आपकी महानता है।**

महाकीर्ति– आपके वचनों का सम्मान करते हैं आर्य! आप धन्य हैं।

छत्रसिंह – (महामात्य के चरणों में गिरकर) आर्य महामात्य! आपकी क्षमा अद्वितीय है। मैं संताप से आत्म-विगलित हो रहा हूँ। मुझे दण्ड मिलना चाहिए।

अदीति– (स्नेह पूर्वक) **क्षमा कर दिया। यह क्या दण्ड पर्याप्त नहीं ?** उठो छत्रसिंह! उठो। विकारों से वचने का प्रयत्न करो। तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।

समवेत स्वर– महामात्य की जय हो! महामात्य की जय.........!!

(पटाक्षेप)

अपरिचित

पात्रानुक्रमणिका :

दीवान अमरचंद	– जयपुर राज्य के दीवान (औघड़ दानी)
चिकित्सक	– नगर के प्रतिष्ठित वैद्य
सुशीला	– एक विपन्न विधवा गृहिणी
कुन्दन व चन्दन	– सुशीला के पुत्र
अन्य नागरिक पथिक	

दृश्य-प्रथम

समय– मध्यान्ह

स्थान– जयपुर की एक गली का मकान

(एक छोटे से कच्चे मकान में एक लघु परिवार विपन्नावस्था में रह रहा है। कुल तीन प्राणी हैं! एक प्रौढ़ा सुशीला एवं उसके दो बालक- बारह वर्षीय कुन्दन और दूसरा छह वर्षीय चन्दन हैं। पिता का तीन वर्ष पूर्व निधन हो चुका है, इस कारण आर्थिक स्थिति जर्जर है! अब भोजन के भी लाले पड़ गये हैं। सुशीला ने तन-मन-धन से टूट कर खाट का सहारा ले लिया है)

चंदन– बड़ी जोर से भूख लगी है माँ (रोने लगता है)

सुशीला– (दु:ख से विह्वल हो) क्या खिलाऊँ बेटे! तुझे क्या खिलाऊँ? (दीर्घ उच्छ्वास ले) इन बालकों का क्या होगा भगवान?

कुन्दन– भगवान हमारी कुछ नहीं सुनते माँ!

चन्दन- सुनते तो हैं वत्स! अंतर्यामी जो हैं पर कुछ कर नहीं सकते।

कुन्दन- जब कुछ कर नहीं सकते तो फिर बार-बार नाम क्यों लेती हो ?

सुशीला- उनका नाम लेने से संकट कट जाते हैं।

कुन्दन- पर अपने तो संकट नहीं कटे माँ।

सुशीला- कटेंगे कुन्दन! कटेंगे। अभी सच्चे मन से भगवान का स्मरण ही कहाँ कर पाते हैं ?

चन्दन- (रोते-रोते) दिन-भर तो भगवान! भगवान! कहती रहती हो माँ ! और झूठ बोलती हो।

कुन्दन- चन्दन सच ही तो कह रहा है माँ!

सुशीला- हम स्वार्थी हैं बेटे! स्वार्थियों की बात वे नहीं सुनते।

कुन्दन- तब फिर उनका स्मरण कैसे करना चाहिए माँ ?

सुशीला- मन को एकदम शान्त कर परमात्मा का स्मरण किया जाता है वत्स!

कुन्दन- लो! मैं मन को शान्त कर प्रार्थना करता हूँ। हे भगवान! मेरी माँ को सुखी कर दो।

सुशीला- (क्षीण स्वर में हँसकर) बेटे! सुख का समुद्र अपने भीतर है। शान्त भाव से उसमें हम देखें तो अपने भीतर बैठे परमात्मा के दर्शन होते हैं। तब परम सुख मिलता है।

कुन्दन- तब फिर हम सब मन्दिर में भगवान के दर्शन करने क्यों जाते हैं ?

सुशीला- इसलिए कि मन्दिर के भगवान को देखकर अपने भीतर के भगवान को देखने की अभिलाषा होने लगे। जिस दिन देख लेंगे, उसी दिन सुखी हो जायेंगे।

कुन्दन- (आश्चर्य से) देखने भर से सुखी हो जायेंगे ?

सुशीला- हाँ बेटे! भगवान का रूप ही ऐसा.........

चन्दन- माँ भूख लगी है ना।

सुशीला- हाँ बेटे! पर क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा। अस्वस्थता ने ऐसा घेरा है कि मजदूरी भी नहीं कर पाती।

कुन्दन- तुम शीघ्र अच्छी हो जाओगी माँ!

सुशीला- असंभव है पुत्र! अब अच्छी नहीं हो सकूँगी। मेरा रहना, न रहना बराबर ही है बल्कि मेरी बीमारी ने तुझे और भी परेशान कर दिया है।

चन्दन- (रोने लगता है) माँ!

कुन्दन- रो मत चन्दन ! (गले से लगा लेता है) रो मत अभी तू पानी पी ले।

चन्दन- (रोते-रोते) कल से पानी ही तो पी रहा हूँ भैया ! अब नहीं पिया जाता। जी मिचलाता है, कै को जी करता है। मुझे तो भूख लगी है।

कुन्दन- अच्छा तेरे लिए कुछ खाने को लाता हूँ (जाने लगता है)

सुशीला- (व्यथित हो) कहाँ से लायेगा बेटा ! जा कहाँ रहा है ?

अभी आता हूँ (बाहर आ जाता है)

कुन्दन- चन्दन ! आ बेटे ! आ जा।

सुशीला - (चन्दन माँ की खाट पर जा बैठता है। सुशीला उसे छाती से लगा लेती है। संयम रखते हुए भी उसकी आँखों से आँसू बह पड़ते हैं)

(अपने ही घर के द्वार पर कुन्दन आ बैठता है। वह उदास विचार मग्न है कि अचानक उसके मस्तिष्क में कोई विचार कौंध जाता है। उसे लगता है कि अब भिक्षा माँगने के अतिरिक्त अन्य उपाय शेष नहीं है। अचानक उसके मुख में शब्द निकल पड़ते हैं)

कुन्दन- नहीं, नहीं मैं भिक्षा नहीं मागूँगा। मरना स्वीकार है, पर भिक्षा नहीं ।......... फिर क्या करूँ?

(राहगीरों को वह उत्सुकतापूर्वक देखने लगता है। वह उठकर एक डग आगे बढ़ता है। ओंठ याचना के लिए फड़कते हैं पर कुन्दन कठोरता से संयमित हो जाता है। दो व्यक्ति परस्पर चर्चा करते हुए निकलते हैं, वह उनके वाक्यांश सुन लेता है)

एक व्यक्ति- तुमने पाँच सौ रुपये की घोषणा करके सबको आश्चर्य चकित कर दिया। सुनकर मैं स्वयं स्तंभित हो गया।

दूसरा व्यक्ति- व्यक्ति की यही तो बुद्धिमानी है कि अवसर का लाभ ले ले।

(कुन्दन उपर्युक्त वाक्य को सुनकर आशान्वित हो जाता है। उसकी याचक वृत्ति उभर आती है। संयम का बाँध टूट जाता है)

कुन्दन- श्रीमान्! कुछ मेरी सहायता करें, आपका कृतज्ञ रहूँगा।

एक व्यक्ति- (हँसते हुए) क्यों नहीं? हम इसीलिए तो निकले हैं। क्या बात है?

कुन्दन- (मन ही मन पछताते हुए) मेरी माँ बीमार है। उपचार के लिए रुपयों की आवश्यकता है।

दूसरा व्यक्ति- गनीमत है कि उपचार के लिए पैसे चाहिए, मरी तो नहीं; नहीं तो कफन के लिए पैसे माँगने वालों की कमी नहीं।

कुन्दन- (किंचित् उत्तेजित हो) आप सहायता न करें परन्तु मेरी माँ के प्रति इतने निकृष्ट अपशब्दों का प्रयोग कृपया न करें ।

एक व्यक्ति- वाह भिखारी और ये अभिमान!

कुन्दन- मैं भिखारी नहीं हूँ। (हताश हो रोने लगता है)

दूसरा व्यक्ति- भिक्षा माँगना व्यापार बन गया है।

एक व्यक्ति- बिना श्रम किये अच्छी-खासी आय हो जाती है। क्या बुरा है?

(दोनों चले जाते हैं। दीवान अमरचन्द साधारण वेशभूषा में वहाँ से निकलते हैं। बालक कुन्दन को रोते देखकर वे उससे कारण पूछते हैं)

दीवान अमरचन्द - बालक! तुम क्यों रो रहे हो?

बालक– मेरी माँ बहुत बीमार है। एक व्यक्ति से मैंने इस संबंध में सहायता चाही तो वह 'मरी तो नहीं माँ' कहते हुए चला गया। आदरणीय महोदय ! क्या उन्हें ऐसा कहना चाहिए था ?

दीवान अमरचन्द–नहीं, नहीं ! ऐसा अपशब्द कहना उचित नहीं है। तुम कैसी सहायता चाहते हो वत्स ?

कुन्दन– मुझे कुछ रुपये चाहिए ताकि मैं अपनी माँ का उपचार कर सकूँ। वे दो माह से पड़ी हैं। उपचार के अभाव में उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा है।

दीवान अमरचन्द–तुम्हारे पिता उपचार नहीं कराते ?

कुन्दन– (भरे कंठ से) उनका निधन हो चुका है। अब तो घर में भोजन करने को भी कुछ नहीं हैं, उपचार कहाँ से हो। माँ के अतिरिक्त हम दोनों भाइयों का कोई नहीं है श्रीमान् !

दीवान अमरचंद– तुम दो भाई हो ?

कुन्दन– मुझसे बहुत छोटा है मेरा चन्दन। वह भी दो दिन से भूखा रो रहा है।

दीवान अमरचन्द– चिंता न करो, हम तुम्हारी व्यवस्था कर देंगे,तुम पढ़ते हो या नहीं ?

कुन्दन– इस वर्ष शुल्क के अभाव में परीक्षा में नहीं बैठ सका वरना आठवीं पास हो जाता।

दीवान अमरचंद–पढ़ना चाहते हो ?

कुन्दन– पढ़ना कौन नहीं चाहेगा श्रीमान् ! पर अब कुछ ऐसा कार्य चाहता हूँ कि माँ के उपचार के साथ परिवार को एक जून तो रोटी मिल सके। अपने छोटे भाई को अवश्य शिक्षित बनाऊँगा ।

दीवान अमरचंद–तुम्हें बधाई है बेटे ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। क्या नाम है तुम्हारा ?

कुन्दन– जी कुन्दन, क्या मैं आप से आशा करूँ ?

दीवान अमरचन्द– क्यों नहीं ? **मनुष्य के काम मनुष्य ही आता है।** तुम अपने घर का पता हमें दे सकते हो ?

कुन्दन– अवश्यमेव श्रीमान् ! यह कुटिया मेरी ही है।

दीवान अमरचन्द–हमें इस समय आवश्यक कार्य है फिर आऐंगे, तब तक तुम इन सौ रुपयों से काम चलाओ (रुपए देते हुए)

कुन्दन– (आँखें फाड़कर देखते हुए) सौ रुपये।

दीवान अमरचन्द–तुम्हें आवश्यकता है न रुपयों की। चिकित्सक को बुलाकर माँ को दिखाओ। औषधि का प्रबन्ध करो और कुछ खाद्य सामग्री ले आओ। जाओ विलंब मत करो ।

(कुन्दन शीघ्रता से बाजार चला जाता है। उसके ओझल होते ही दीवान अमरचन्द उस जर्जर घर में प्रवेश करते हैं)

दीवान अमरचन्द– क्षमा करें बहिन ! मुझे आपके बालक से ज्ञात

हुआ कि आप अस्वस्थ हैं, अतः चला आया।

(चन्दन नवागंतुक को देखकर चुप होकर उन्हें एकटक देखने लगता है। सुशीला भी उठने का उपक्रम करती है)

सुशीला- (क्षीण स्वर में) स्वागत है आपका। कृपया विराजें। कुछ बिछादे चन्दन।

दीवान अमरचन्द-औपचारिकता की आवश्यकता नहीं। आप लेटी रहें। (कहते हुए जमीन पर बैठ जाते हैं)

सुशीला- अरे, अरे! आपके वस्त्र मैले हो जायेंगे।

दीवान अमरचन्द - वस्त्र तो मैले होते ही हैं, मन मैला न हो, स्वच्छ बना रहे, यह सावधानी रखना अनिवार्य है।

सुशीला- आप देव पुरुष हैं बन्धु!

दीवान अमरचन्द- देव पुरुष कहकर भाई-बहिन के निकटतम स्नेह सम्बन्ध में दूरी क्यों बना रही हैं।

सुशीला- भूल हुई परन्तु क्षमा करें मैं आपको पहचानी नहीं हूँ।

दीवान अमरचन्द-समझ लो एक भाई अपनी बहिन की कुशल-क्षेम जानने आया है। (जेब से मेवा निकालकर देते हुए) लो बेटे खाओ।

(चन्दन माँ की और प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता है। स्वीकारात्मक संकेत पा, लेकर खाने लगता है)

दीवान अमरचन्द-कठिन संकट में भी नन्हें बालक का अनुशासित रहना महान उज्ज्वल भविष्य की सूचना देता है।

खाओ चन्दन खाओ! हम तुम्हारे मामा हैं,..... आप कब से अस्वस्थ हैं बहिन?

सुशीला- कुन्दन के पिता के स्वर्गवास के पश्चात् आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती गई। सच पूछो बन्धु! तो मेरी अस्वस्थता का यही कारण है।

दीवान अमरचन्द-आपके यहाँ व्यापार होता था?

सुशीला- गल्ले का व्यापार था, संतोषजनक आजीविका थी परन्तु अचानक उनके निधन से व्यापार एकदम बैठ गया, उधारी भी वसूल न हो सकी; फलस्वरूप खाने के भी लाले पड़ गये।

दीवान अमरचन्द-चिन्ता न करो बहिन! यह तो समय का परिवर्तन है। **कभी धूप कभी छाया संसार का सनातन नियम है, इसमें हर्ष-विषाद करना व्यर्थ है। उस शाश्वत आत्मस्वरूप के दर्शन करो जो इस चंचलता में भी अचल एक रूप है।**

सुशीला- आपका कथन यथार्थ है बंधु! परन्तु अनुभूति के दुर्लभ क्षण की अनुपलब्धि से यह दुष्ट मन बाहर दौड़ा करता है। मैंने पूर्व में जो दुष्कर्मों के बीज बोये हैं, उनका फल तो मुझे भोगना ही होगा बंधु।

दीवान अमरचन्द-छि: छि: कैसी बात कर रही हो बहिन! आत्मा के क्या हाथ-पैर हैं जो वह बीज बोएगा? यह तो अमूर्तिक है।

सुशीला- आत्मा अमूर्तिक है पर वह कुछ नहीं करता, यह बात नहीं जँचती। आप ही बताएँ? जो करता नहीं, तो भोगता कैसे है? यह तो प्रत्यक्ष में असत्य दिखता है।

दीवान अमरचन्द-वह तो आप भी मान रही हैं कि आत्मा अमूर्तिक है। अमूर्तिक होकर वह कर्म कैसे करेगा?

सुशीला- शरीर से करता है।

दीवान अमरचन्द- तो आत्मा और शरीर एक हैं?

सुशीला- एक नहीं हैं पर जब तक साथ हैं तब तक तो सभी अपना मानते हैं।

दीवान अमरचन्द- **मानने की बात छोड़ो, मानने को तो व्यक्ति सारे विश्व को ही अपना मान लेता है पर कोई अपना है तो नहीं?**

सुशीला- यह सत्य है। संसार में अपना कुछ भी नहीं है।

दीवान अमरचन्द- तथ्य यह है कि शारीरिक जो भी क्रिया होती है, वे सब उसी की क्षण-क्षण परिवर्तित अवस्थायें हैं। उन-उन क्रियाओं से अपनी भावनाओं को जोड़कर, अपनी स्वयं की मान लेता है। क्रियाओं से जुड़कर कर्ता और उसके फल से जुड़ कर भोक्ता बन जाता है।

सुशीला- जुड़ता तो आत्मा ही है न?

दीवान अमरचन्द-भावों से जुड़ता है, क्रिया करके नहीं। शरीरादि जो वस्तुयें हमारी नहीं हैं, उनके हम कर्ता बनें तो अज्ञानता नहीं होगी? जब दोनों भिन्न हैं तो हम

भावों से ही क्यों जुड़ें?

सुशीला- निश्चित ही अज्ञानता है। जो हमारा कर्म नहीं, उसे स्वीकारना अज्ञानता होगी। तब हम क्या करें?

दीवान अमरचन्द-जो कर सकते हैं और करते भी हैं; ज्ञान करें! **'राम झरोखा बैठकर सबका मुजरा लेय।' ज्ञान के झरोखे से देखो, जानो! राग-द्वेष मत करो!** अभी तक ज्ञान ही करता रहा आत्मा। भविष्य में भी वह यही करेगा।

सुशीला- यह रहस्योद्घाटन कर आपने मेरा बड़ा उपकार किया है।

दीवान अमरचन्द-**तथ्य ज्ञान में स्पष्ट होते ही रहस्य नहीं रह जाता। ज्ञान की जागृति अज्ञानता में किए कर्म को नहीं स्वीकारती। जैसे स्वप्न में हुए दोष को जागने पर कोई स्वीकार नहीं करता।**

सुशीला- यही एक सद्ज्ञान है, जिसके बल पर साधक, साधु या गृहस्थ संकटों को निःशंक पार कर जाते हैं।

दीवान अमरचन्द-हाँ बहिन! यह ज्ञान समस्त आत्माओं में सदैव विद्यमान है कि वो आत्मा ही ज्ञान स्वरूप है।

सुशीला- ऐसा जानते हुए भी बड़े-बड़े तपस्वी स्खलित हो जाते हैं बंधु! फिर तो हम सामान्य जन हैं।

दीवान अमरचन्द-पर हमें यह न भूलना चाहिए कि **सामान्य जन ही महान बनते हैं। सतत् अभ्यासी गृहस्थ ही**

साधक बन अपने अभीष्ट को पा लेता है।

सुशीला- काश! आपके वचनों का अनुसरण कर सकी तो जीवन धन्य हो जायेगा किन्तु मैं दरिद्री, नन्हे-मुन्हे बालक! जठराग्नि शान्त करने के लिए नित-प्रति भोजन तो चाहिए ही ।

दीवान अमरचन्द-यह तो शरीर का अनिवार्य धर्म है बहिन! समय पर उसकी पूर्ति होगी। मन को मत गिराओ। घर-घर में चैतन्य प्रभु का निवास है। अपने ही प्रभु का अनादर हम स्वयं क्यों करें।

सुशीला- आप सत्य कह रहें हैं पर यह सब भरे पेट में सूझता है।

दीवान अमरचन्द-ये कोई आवश्यक नहीं, भरे पेट वाले क्या अहंकार में नहीं डूब जाते हैं? शारीरिक धर्म से ऊपर उठकर एक बार तनिक स्वयं को निहारो तो, अगाध आनन्द प्राप्त कर मन तृप्त हो उठेगा।

सुशीला- प्रयत्न करूँगी बन्धु! अभी तो मन अत्यन्त विचलित है।

दीवान अमरचन्द- तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, चिन्ता न करो, तुम जैसी सहिष्णुदेवी के सुदिन शीघ्र ही लौट आने वाले हैं। मैं फिर आऊँगा। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया, क्षमा करना।

सुशीला- (व्यथित हो) आप जा रहे हैं? कभी-कभी आते रहें। आपके वचनों से बड़ी शांति मिली है।

दीवान अमरचन्द-अवश्य आऊँगा। वचन तो मात्र एक बहाना है,

शांति तो तुमने स्वयं ही स्वयं से प्राप्त की है। आज्ञा दो मैं चलूँ।

(सुशीला भरे मन से हाथ जोड़कर विदा देती है। दीवानजी के चले जाने पर उसकी आँखों से दो बूंदें कपोलों पर ढुलक पड़ती हैं।)

सुशीला- (स्वगत) बंधु! **तुम्हारे अनमोल बोल संघर्षों के अंधेरे में प्रकाश की एक रेखा खींच गये। अंतर में उठी दुःख की आंधी जैसे अचानक कहीं ठहर गई है।**

(दृश्य-दूसरा)

(कुन्दन चिकित्सक को साथ लेकर आता है। उसके हाथ में दूध का कुल्हड़ व खाद्य सामग्री का दोना है, सब एक ओर रख देता है)

कुन्दन- (प्रसन्नता पूर्वक) वैद्यजी को ले आया, आइये वैद्यजी! (एक टूटी-सी कुर्सी बैठने के लिए देता है, वैद्यजी सम्भल कर बैठ जाते हैं)

सुशीला- कुन्दन को संकेत से बुलाकर कान में कुछ कहती है।

कुन्दन- सब प्रबन्ध हो गया है माँ! चिन्ता न करो। आप स्वस्थ हो गई तो सब ठीक हो जायेगा।

चिकित्सक- (नाड़ी देखकर) कोई रोग विशेष ज्ञात नहीं होता।

नाड़ी मात्र दुर्बलता बता रही है।

सुशीला- भूख में पीड़ित व्यक्ति को अनेक व्याधियाँ घेर लेती हैं। वैद्यजी! चक्कर आते हैं, खड़ी होती है तो आँखों में अंधेरी छा जाती है। अब तो दो डग भी रखना कठिन लगता है।

चिकित्सक- (परिस्थिति का अनुमान लगाते हुए सान्त्वना के स्वर में) अच्छा बेटी! घबराओ नहीं मैं औषधालय से पौष्टिक औषधि दे दूँगा। तुम शीघ्र ही नीरोग हो जाओगी।

सुशीला- धन्यवाद वैद्यजी !

चिकित्सक- बेटे कुन्दन! तुम थोड़ी देर पश्चात् औषधालय में आ जाना। मैं एक और रोगी का परीक्षण कर अभी लौट आऊँगा।

कुन्दन- (शुल्क देते हुए) ये रखें वैद्यजी!

चिकित्सक- तुम रखो बेटे! मैं शुल्क नहीं लूँगा। औषधि भी निःशुल्क दूँगा ।

सुशीला- वैद्यजी! शुल्क रख लें, आगे भी कदाचित् आप को कष्ट करना पड़े ।

चिकित्सक- तुम निस्संकोच बुला भेजना। मेरा तो कार्य ही है यह। बेटी! मैं भी गृहस्थ हूँ, मुझे भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने दो। कुन्दन को शीघ्र भेजना।

(वैद्यजी चले जाते हैं। सुशीला कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखती रह जाती है। कुन्दन द्वार तक पहुँचा कर लौट आता है)

कुन्दन- आज का दिन बहुत अच्छा है। आज ही एक सज्जन ने मुझे सौ रुपये दिए। आज वैद्यजी भी घर आ गये और उन्होंने भी नहीं लिये जबकि देने को पैसे थे।

सुशीला - वैद्यजी बड़े सहृदय हैं कुन्दन! धरती अभी भी सज्जनों से सम्पन्न है बेटे! पर यह तो बताओ, सौ रुपए तुम्हें कहाँ से मिल गये ? चोरी-ओरी तो नहीं की तूने ? बड़ा घृणित कार्य है यह।

कुन्दन- कैसी बात करती हो माँ! मैं चोरी क्यों करूँगा! आप मुझे अच्छी बातें सिखाती रही हैं। सच बताऊँ माँ! मैंने तुम्हारे उपचार के लिये दो व्यक्तियों से प्रार्थना की तो उन्होंने अपशब्द कहते हुये मेरा उपहास किया। मुझे रोना आ गया।

सुशीला- सभी व्यक्ति वैद्यजी के समान नहीं होते बेटे! फिर ये रुपये।

कुन्दन- मुझे रोता देख एक सज्जन ने मुझसे कारण पूछा और सौ रुपये दे दिये। उन्हीं के कहने से मैं वैद्यजी को लाया और कुछ खाद्य सामग्री और दूध भी ले आया

हूँ। तुम दूध पी लो, कुछ खा लो। आ चन्दन! हम लोग भोजन कर लें।

सुशीला- सौ रुपये की इतनी बड़ी राशि उन्होंने दे दी। मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। इससे तो हमारे तीन-चार माह शांति से निकल जायेंगे।

कुन्दन- वे अभी आने को कह गये हैं। आते ही होंगे। खा पी कर हम जल्दी निबट लें।

(कुन्दन दूध का कुल्हड़ माँ को दे देता है। दोनों भाई भोजन करने लगते हैं)

सुशीला- (दूध पीते-पीते) कुन्दन! अभी एक धर्मात्मा सज्जन मेरे पास भी आये थे। वे बहुत समझाते रहे।

कुन्दन- वे ही तो नहीं माँ! जिन्होंने मुझे सौ रुपये दिये हैं। पीली पगड़ी लगाये थे वे।

चन्दन- पीली पगड़ी वाले ही तो यहाँ आये थे। देखो न मुझे उन्होंने मेवा खाने को दिया था। लो, तुम भी खाओ भैया!

सुशीला- निश्चित वे ही हैं, उनके वचन बहुत मीठे थे। अब वे कहाँ मिलेंगे? मैंने उनका नाम-धाम भी न पूछा।

कुन्दन- वे अवश्य आयेंगे माँ! (खा पीकर) रात होने लगी है। मैं जाकर औषधि ले आऊँ?

सुशीला- आधा रोग तो तुम दोनों को खाते देखकर ही चला गया है कुन्दन!

अपरिचित स्वर- (बाहर से आवाज आती है) कुन्दन! ऐ कुन्दन।

(कुन्दन दौड़कर बाहर आता है)

कुन्दन- हाँ दादा! क्या बात है?

अपरिचित- देख भाई! कठिनता से तेरे घर का पता लगाते आया हूँ। तुम्हारे मामा ने गेहूँ की बोरियाँ भेजी हैं, सो रखवा लो।

कुन्दन- मेरे मामा ने? मेरे तो कोई मामा ही नहीं हैं।

अपरिचित- तुम्हारी माँ जानती होगी। (बोरियाँ उठाकर अन्दर ले आते हैं)

सुशीला- (सब बातें सुनकर) भैया का क्या नाम है दादा?

अपरिचित- नाम-आम तो मैं नहीं जानता बाईजी! पर उन्होंने कहा है कि अच्छी तरह चुन लेंगी। चुना हुआ नहीं है। (आगन्तुक व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र बोरियाँ रख कर जाने लगते हैं)

सुशीला- सुन तो दादा! कैसे थे मेरे भैया! वह तो नहीं जो दोपहर को आये थे?

अपरिचित- मैं क्या जाँनू जी! मुझे देर हो रही है, गाँव दूर है। (वे शीघ्रता से निकल जाते हैं)

कुन्दन- माँ! मुझे इनकी आवाज बिल्कुल वैसी लग रही थी, जैसी उन दानी सज्जन की थी।

सुशीला- (भूली-सी सुधि जैसे आ जाती है) हाँ रे! वे ही थे। केवल वेश-भूषा बदली थी, स्वर वे बदल न सके।

जा दौड़ कुन्दन ! उन्हें बुला, एक बार चरण छू लूँ। (कुन्दन जाता है, तत्काल लौटकर)

कुन्दन- नहीं मिले माँ ! दूर गली तक देख आया।

सुशीला- धन्य है अपरिचित औघड़दानी। मेरे जन्म-जन्म का दारिद्रय मिटा गए। मन ज्ञान से अभिभूत हो उठा। जाने किस ओर से निकल गए..... ला बेटे कुन्दन! पीपे उठा, गेहूँ उसमें भर लें वरना चूहे बोरियाँ कुतर डालेंगे। (कुन्दन पीपे उठाता है। चन्दन भी छोटे-छोटे हाथों से भरने लगता है)

चन्दन - (अचानक पीली मुद्रा देखकर) माँ! गेहूँ में तो पीला पैसा है। देखो !

सुशीला- (देखकर) अरे ये तो मुहर है बेटे! सोने की मुहर है। (गेहूँ भरते हुए कई मोहरें मिल जाती हैं। साथ ही कागज की एक चिट भी मिलती है)

कुन्दन- (पढ़ता है-)

बहिन!

भाई की ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। उचित औषधि लें, स्वस्थ होकर बालकों को शिक्षित बनाएँ। आय की चिंता न करें। शुभोदय में स्वयमेव पूर्ति होती रहती है। आत्मचिंतन की ओर मन को मोड़ने का सतत्

प्रयास श्लाघनीय है। आत्मस्वभाव ज्ञान स्वरूप है। वह त्रिकाल ज्ञेय को विषय करता है। अन्य वस्तुओं का वह कभी करने वाला नहीं होता और जब वह किसी का कुछ करता ही नहीं है तो अन्य वस्तुओं को भोगने का प्रश्न समाप्त हो जाता है। ज्ञान, ज्ञान का कर्त्ता है, वही उसका कर्म है एवं ज्ञान ही उसका भोग है। तुम्हें अनन्त आनन्द की प्राप्ति हो!

इस शुभ कामना के साथ!

-तुम्हारा हितेच्छु भाई

(सुशीला का मुख आनन्द के आँसुओं से भीग जाता है। वह मन ही मन अपने हितैषी उस महान अपरिचित भाई को हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

(पटाक्षेप)

- आत्मज्ञान बिना शास्त्रज्ञान भी सुख का कारण नहीं होता।
- ज्ञायक, ज्ञायक ही है! सर्व अपेक्षाओं से पार, सर्व विपदाओं से पार, शाश्वत ज्ञानानन्दमय।

-ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'

अब न चलेगी चतुराई

पात्रानुक्रमणिका:

अमानसिंह	- पन्ना नरेश
सूरजसिंह	- प्रमुख अमात्य
संतोषीलाल	- कोषाध्यक्ष
संपत शाह	- श्रेष्ठी
सुखदेव	- राजा का सेवक
यशोदा	- महारानी (अमानसिंह की पत्नी)
कमला	- श्रेष्ठी संपत शाह की पुत्रवधू
प्रतिहार	

(**दृश्यांकन**-पन्ना- नरेश अमानसिंह अपनी दानवीरता के लिये विख्यात हो गये हैं। उनका सत्ता हथियाने का इतिहास तो रक्तरंजित है किन्तु राज्य की बागडोर सम्हालते ही वे स्वयं सम्हल गये। उन्होंने न्यायपूर्वक शासन कर राज्य की भलाई के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। दानवीर वे अद्वितीय थे। उनके सत्कार्यों की अमिट छाप प्रजा पर ऐसी पड़ी कि उसके हृदय पटल से अमानसिंह की क्रूरता अनायास ही मिट गई। राजमहल के विशाल कक्ष में वे विराजमान हैं। समीप ही अमात्य सूरजसिंह एवं कोषाध्यक्ष संतोषीलाल बैठे हैं)

दृश्य-प्रथम

अमानसिंह- अमात्य सूरजसिंह; खजाने को धूप दिखा दी गई है ?

सूरजसिंह- मैं यही सूचना देने आया था राजन्! कि आपकी आज्ञा का तत्काल पालन हुआ है। सौभाग्य! कि आज धूप भी अच्छी निकली थी।

अमानसिंह- अब धूप ढलने को है। समस्त सामग्री यथा स्थान रख दें।

संतोषीलाल- जी, हम उसी कार्य से निवृत्त होकर आपको आवश्यक सूचना देने एवं क्षमा याचना करने आये हैं।

अमानसिंह- क्षमा याचना क्यों ? क्या कोई भूल हो गई है ?

संतोषी लाल- भूल हमसे तो नहीं हुई अन्नदाता! भाग्य ही कुछ विपरीत है।

अमानसिंह- (हँसते हुये) हमारा या तुम्हारा ?

संतोषीलाल- क्या कहूँ महाराज! खजाना घट गया है।

अमानसिंह- (आश्चर्यचकित हो) खजाना घट गया ? क्या कह रहे हैं आप ? प्रतीत होता है, हम सबका भाग्य विपरीत है।

सूरजसिंह- मैं भी वहीं उपस्थित था प्रजापति! बात तो सत्य है। जितना सूखने डाला था, सूखने पर वह न्यून हो गया।

अमानसिंह- अपना अभिप्राय स्पष्ट करें। क्या ये वस्तुयें भी सूख जाती हैं ?

संतोषीलाल- प्रथम बार अनोखा अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व कभी यह कार्य किया ही नहीं था।

अमानसिंह- इस बात से हम सभी अनजान थे। खजाने के कम होने

का गम नहीं अपितु इस बात का हर्ष है कि आज एक नवीन आश्चर्यजनक रहस्य ज्ञात हुआ। सामग्री में कितना अंतर आया ? कौन-कौन सी सामग्री घटी ?

संतोषीलाल- लगभग एक सेर मोहरें घुन गईं महाराज!

अमानसिंह - घुनी मोहरें खजाने में तो नहीं रखीं ?

सूरजसिंह - नहीं श्रीमान् ! उनसे अन्य मोहरें घुनने का डर था ।

अमानसिंह- बुद्धिमत्ता से काम लिया सूरजसिंह ! स्वर्ण-रजत सिल्लियाँ तो यथावत् होंगीं ?

संतोषीलाल- नहीं महाराज! उनमें सीलन आ गई थी। सूखने पर वे भी तौल में घटी हैं।

अमानसिंह- जवाहरात तो नहीं घुने ?

सूरजसिंह- नहीं महाराज! वे सुरक्षित रखे थे परन्तु....

अमानसिंह- निस्संकोच कहें। क्या कहना चाहते हैं आप ?

सूरजसिंह- खुले आकाश के नीचे सुखाते ही चील-कौए मँडराने लगे। देखने पर ज्ञात हुआ है कि कुछ सड़ गये थे।

अमानसिंह- (जोर से हँस पड़ते हैं) तो वह अवश्य झपट्टा मारकर बहुत-से ले उड़े होंगे। (स्नेह पूर्वक) कोई बात नहीं। इसमें भय की क्या आवश्यकता ? ले जाने दो। अब शेष तो कुछ होंगे ?-

संतोषीलाल- आपकी कृपा के हम सदैव आकाँक्षी हैं अन्नदाता!

सूरजसिंह- आपकी प्रसन्नता हमें वरदायिनी है प्रजावत्सल! (नेपथ्य से सियारों की हुआ-हुआ की आवाज आती है)

अमानसिंह- अमात्य! ये सियार पुनः क्यों आये हैं? अब इन्हें क्या कष्ट है ?

सूरजसिंह- कोलाहल होना सहज है राजन्! पाँच हजार सियार हैं अपने।

अमानसिंह - क्यों ? क्या इनमें पाँच हजार कंबल वितरित नहीं किये ?

सूरजसिंह- अविलंब आदेश का पालन किया था श्रीमान्!

संतोषीलाल - कंबल क्रय करने के लिए कोष से मुद्रा दी थी महाराज!

अमानसिंह- अब ये कौन-सी प्रार्थना लेकर उपस्थित हुये हैं ?

सूरजसिंह- उस दान की कृतज्ञता प्रदर्शित कर रहे हैं दयानिधान! याचक का यह महान कर्त्तव्य है। वे आपके आभारी हैं।

अमानसिंह- आभारी हमारे नहीं सूरजसिंह! इन्हें आपका आभार मानना चाहिए। आप ही उनकी भाषा को समझकर उनके अभिप्राय से हमें अवगत कराते हैं। उनसे आप कह दें कि कृतज्ञता की आवश्यकता नहीं है। प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य कृतज्ञता का प्रतिदान नहीं चाहता।

सूरजसिंह - यह आपकी महानता है महाभाग! फिर भी दान लेने वालों का भी अपना कर्त्तव्य है। कृपया, उन्हें उससे वंचित न करें। (रात्रि होने को आ गई है। सेवक आता है, उसे देखकर)

संतोषीलाल- आप विश्राम करें महाराज!

सूरजसिंह - प्रातःकाल पुनः सेवा में उपस्थित होंगे प्रजापति! अब

आज्ञा दें।

अमानसिंह- आप लोग भी जायें, शयन करें।

सूरजसिंह- (अभिवादन करते हुए) रात्रि मंगलदायिनी हो राजन्!

संतोषीलाल- रात्रि सुखद एवं शुभ हो प्रजावत्सल!

अमानसिंह- तथास्तु।

(दोनों का प्रस्थान। पर्यंक पर अमानसिंह शयनस्थ हो जाते हैं) सेवक हस्त-पादादि मर्दन करता है।

अमानसिंह- सब कुशल क्षेम है सुखदेव!

सुखदेव- जी महाराज! सर्वत्र कुशलता है। प्रजा आपकी विरुदावली गाते नहीं थकती। सैंकड़ों वर्ष पश्चात् आप जैसे प्रजावत्सल नरेश की सुखद छाया प्राप्त हुई है प्रजा को।

अमानसिंह- हम प्रशंसा सुनने के अभ्यस्त नहीं हैं सुखदेव! तुम सब जगह जाते हो, अत: हम यह जानना चाहते हैं कि सार्वजनिक रूप से ऐसा कोई अभाव तो नहीं; जिससे हमारी प्रजा को कष्ट होता हो?

सुखदेव- कष्ट कैसा महाराज! आपके शासन में कष्ट ही दुर्लभ हो गया है। आवश्यकताओं की पूर्ति तत्क्षण हो जाती है। बड़े-बूढ़े प्रतिक्षण मंगल कामना करते हुये आपको आशीर्वाद देते हैं।

अमानसिंह- बस, अब बातें बंद करो, इनसे कोई लाभ नहीं। हमारी

नींद लग जाये तो तुम चुपचाप चले जाना।

सुखदेव- जी महाराज!

(अमानसिंह आँखें बंद कर लेते हैं। सुखदेव की दृष्टि उनके हाथ की अँगूठी पर पड़ती है। वह लोलुप दृष्टि से एकटक देखता रहता है, मर्दन करना भी भूल जाता है। फिर उसे याद आ जाती है और वह मर्दन करने लगता है। दृष्टि अँगूठी से हटती नहीं है। चंद समय पश्चात् अमानसिंह को सोया समझ कर)

सुखदेव- महाराज... महाराज... सो गये महाराज!

(धीरे से अँगुली में से मुद्रिका निकालने का उपक्रम करता है)

अमानसिंह- क्यों रे, कल एक अँगूठी उतार ली। आज दूसरी उतारने लगा?

सुखदेव- (भयभीत हो पैरों पर गिर पड़ता है) क्षमा करें माई-बाप! मुझे क्षमा करें। बड़ा अपराध हो गया है। मैं अभी लाकर देता हूँ महाराज!

अमानसिंह- वह अँगूठी तो तेरी हो गई; हमें नहीं चाहिये। भविष्य में ऐसा मत करना। (अँगूठी उतार कर देते हुये) ले, यह भी ले ले।

सुखदेव- नहीं, महाराज! यह आपके ही हाथ में शोभा देती है। मैंने दयानिधान की चोरी कर अत्यंत खोटा कार्य किया

है। मेरे कोढ़ निकले, मैं नरकों में पड़ूँ महाराज!

अमानसिंह- तूने भूल स्वीकार कर ली; अब तेरा कुछ नहीं होगा। जा, मन से ग्लानि निकाल दे। (अँगूठी देते हुये) ले ये अँगूठी अपनी पत्नी को पहिना देना। हमारी ओर से यह उपहार है।

सुखदेव- (सकुचाते हुये) जय हो महाराज की। मुझे क्षमा करें। भगवान जनम-जनम में आपका किंकर बनायें।

अमानसिंह- (मुस्कुराकर) जा, तुझे क्षमा किया।

(सुखदेव का प्रस्थान। अमानसिंह सो जाते हैं। रात्रि समाप्त होती है। पौ फटते ही उनकी नींद खुल जाती है। पड़ोस से चक्की पीसने की आवाज के साथ एक कोकिल-कण्ठी नवयुवती का स्वर मुखरित हो रहा है। अमानसिंह ध्यान से सुनने बैठ जाते हैं)

युवती गीत गा रही है-

घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई।
मोरी माथे की बिंदिया गिर गई,
मोरी माथे की बिंदिया गिर गई।
अब कौनों से करूँ फरयाद, बिंदिया गिर गई।
घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई।।
माता ने दई जब सोने की बिंदिया,
बाबुल ने पन्ना जड़ाय, बिंदिया गिर गई।

घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई।।
बाँधी वीरन ने रेशम डोरी,
भौजी ने कर दव सिंगार, बिंदिया गिर गई।
मोरी माथे की बिंदिया गिर गई।।
घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई।

(महारानी यशोदा का प्रवेश, वे महाराज को विचार-मग्न देखती हैं)

यशोदा- महाराज! आपने अभी तक शैया नहीं त्यागी। स्नान करें, पूजा का समय हो रहा है। आप किन विचारों में खोये हैं?

अमानसिंह- हुँ........महारानी...............!

यशोदा- कुशल तो है?

अमानसिंह- (सहज हो) हाँ-हाँ तुम घबरा गईं?....... यशोदे! तुमने गीत सुना? कितना मधुर कण्ठ है?

यशोदा- मैं तो प्राय: प्रतिदिन ही सुना करती हूँ महाराज! स्वर मधुर है। ये श्रेष्ठी संपत शाह की पुत्रवधू है। चक्की पीसते हुये गाती ही रहती है।

अमानसिंह- पर यह गीत आज ही गाया है। प्रतीत होता है, इसकी बिंदिया खो गई है और बिंदिया से इसे बड़ा लगाव है।

यशोदा- बिंदिया सुहाग का प्रतीक है देव! किस सुहागिन को यह प्रिय न होगी?

अमानसिंह- वह गा रही थी 'घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई।' क्या यह हमारे लिये चुनौती नहीं है? उसने हमारी इतनी लाज तो रखी कि 'हम घर में

नहीं हैं' होते तो ?............

यशोदा– उसका विश्वास डगमगाया तो है किन्तु छूटा नहीं है।

अमानसिंह– (महारानी की हृदय की थाह लेते हुये) तब फिर?

यशोदा– महाराज चुनौती स्वीकार करें।

अमानसिंह– (हँसते हुये) अकेले नहीं, महारानी! साथ तुम्हें भी देना होगा।

यशोदा– मैं आपसे पृथक् कब हूँ?

अमानसिंह– आशा के अनुकूल ही विचार हैं महारानी! तुम नित्यकर्म से निवृत्त हो लो। तब तक हम योजना का प्रारूप बना लेते हैं।

यशोदा– जैसी आज्ञा। आप भी निवृत्त हो लें।

अमानसिंह– हम भी अभी आते हैं। (यशोदा का प्रस्थान)

अमानसिंह– (उच्च स्वर से) प्रतिहार!

प्रतिहार– (प्रवेश कर) आज्ञा महाराज!

अमानसिंह– श्रेष्ठी संपत साह से कहो कि मध्यान्ह में उनकी पुत्रवधू को महल में बुलाया है।

प्रतिहार– जी, अभी सन्देश दे देता हूँ।

(पटाक्षेप)

दृश्य– वही

समय– मध्यान्ह

स्थान– वही

(महाराज अमानसिंह व महारानी यशोदा बैठी हैं। उनका वार्तालाप चल रहा है)

अमानसिंह– समझ गईं न हमारी योजना?

यशोदा– भली-भाँति महाराज! आपने तो रूपरेखा सुन्दर बना ली है। बेचारे श्रेष्ठी घबरा जायेंगे पर अंत सुखद होगा।

प्रतिहार– (प्रवेश कर) महाराज! श्रेष्ठी संपतसाह और उनकी पुत्रवधू उपस्थित हैं।

अमानसिंह– भेज दो उन्हें।

प्रतिहार– जी महाराज!

(श्रेष्ठी संपतसाह पुत्रवधू के साथ प्रवेश करते हैं। वे घबराये हुये हैं। पुत्रवधू कमला घूँघट डाले हुये है। वह भी सहमी-सहमी आती है)

संपतसाह– (अनिष्ट की आशंका से भयभीत हो) सेवक का प्रणाम स्वीकार हो महाराज!

अमानसिंह– आइये श्रेष्ठी संपतसाह जी! आपने कष्ट क्यों किया? हमने तो आपकी पुत्रवधू को ही बुलवाया था।

संपतसाह– अकेले आने में डर रही थी महाराज! साधारण घर की कन्या है। महलों में आने का कभी अवसर नहीं आया।

अमानसिंह– कोई बात नहीं, विराजें।

संपतसाह– महाराज! इससे अनजाने में कोई भूल हो गई हो तो क्षमा करें, अबोध है। अधिक उम्र भी नहीं है। गत वर्ष ही इसे व्याह कर लाया हूँ।

अमानसिंह– समस्त भूलें क्षम्य नहीं होतीं श्रेष्ठी!

संपतसाह– (काँपते हुए हाथ जोड़कर) महाराज! एक बार क्षमा

कर दें, पुनः यह भूल नहीं करेगी।

अमानसिंह- हम भी यही चाहते हैं कि भूल की पुनरावृत्ति न हो।

संपतसाह- मैं विश्वास दिलाता हूँ महाराज! निश्चय ही भविष्य में कोई गलती नहीं होगी।

अमानसिंह- हम आपके वचनों पर विश्वास करते हैं श्रेष्ठी। बैठो बेटी! क्या नाम है तुम्हारा?

संपतसाह- कमला है महाराज!

यशोदा- श्रेष्ठी! प्रश्न का उत्तर बिटिया ही देगी।

संपतसाह- बोल बेटी! बोल, महाराज क्या पूछ रहे हैं?

कमला- (लजाते एवं सहमते हुये) मुझे कमला कहते हैं महाराज!

यशोदा- आओ कमला! यहाँ बैठो। (अपने समीप बैठा लेती है)

अमानसिंह- बेटी! तू प्रातःकाल चक्की पीसती है?

कमला- जी महाराज!

अमानसिंह- उस समय आज कौन-सा गीत गा रही थी, सुना तो सही।

यशोदा- (कमला को लजाते हुए देखकर) गाओ कमला! तुम्हारा गीत महाराज को अति प्रिय लगा है। गाओ। श्रेष्ठिन्! आप आज्ञा दे दें।

संपतसाह- जब महाराज स्वयं अपनी बेटी से कह रहे हैं तब मैं आज्ञा देने वाला कौन? गा दे कमला! महाराज की आज्ञा शिरोधार्य होती है।

कमला- (गीत का स्वर वायुमंडल में गूँजने लगता है।) घर नइयाँ राजा अमान, बिंदिया गिर गई, मोरी माथे की

बिंदिया गिर गई.........

अमानसिंह- (गीत समाप्त होने पर) यही तो आरोप है हमारा बिटिया पर कि वह कहती है कि हम घर में नहीं है। इतना बड़ा लांछन हम कैसे सहें श्रेष्ठिन्!

संपतसाह- (अपराधी स्वर में) महाराज!......

कमला- क्षमा कर दें महाराज! अब कभी यह गीत नहीं गाऊँगी।

संपतसाह- मैं पुनः प्रार्थना करता हूँ महाराज, क्षमा कर दें इस अबोध को।

अमानसिंह- क्षमा करना इतना सरल नहीं है श्रेष्ठी! इसका हमें भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। हम कायर तो नहीं कि चुनौती को अनसुना कर दें। दाँव पर सर्वस्व लगाकर भी हमें अपनी लाज सुरक्षित रखनी ही होगी।

संपतसाह- प्रजावत्सल! मैं..........

यशोदा- श्रेष्ठी! महाराज ने निश्चय किया है कि बिंदिया देकर ही हम बेटी की भाँति इसकी बिदाई करेंगे।

संपतसाह- (आश्चर्य चकित हो) यह क्या महाराज........!

अमानसिंह- (हँसकर) तभी न हम बिटिया के आरोप से मुक्ति पा सकेंगे। महारानी! हमारी कमला बिटिया को बहुमूल्य अलंकारों से अलंकृत कर दो।

यशोदा- आपकी आज्ञानुसार शीघ्र ही श्रृंगार किये देती हूँ। (आभूषण लेने जाने लगती है)

अमानसिंह- और देखो महारानी! तुम्हारे पीहर दतिया से जो बेंदी तुम्हें मिली थी, उसे लाना न भूलना।

यशोदा- अवश्यमेव, कमला के माथे पर वही बिंदिया बाधूँगी। (यशोदा अलंकारों की मंजूषा लेकर तत्क्षण लौट आती है)

अमानसिंह- श्रेष्ठी संपतसाह जी! विदाई का प्रबंध करें। अकेले नहीं, बारात लेकर आना। हमारी बेटी डोली चढ़कर जावेगी।

संपतसाह- (आनन्दाश्रु उमड़ आते हैं। गद्‌गद् हो) महाराज! यह अकल्पनीय घटना अनायास ही घट गई। इतिहास इसे अपने हृदय-पटल पर स्वर्णाक्षरों से अंकित कर अनमोल थाती की भाँति सुरक्षित रखेगा। उस समय मेरे मन में.............!

अमानसिंह- (हँसते हुये) अनिष्ट की आशंका घर कर गई थी न?

संपतसाह- महाराज का अनुमान सत्य है। (प्रसन्न मुख है)

(संपतसाह का प्रस्थान)

यशोदा- (आभूषण पहना कर घूँघट उलट देती है और बिंदिया बाँध देती है। नत-मस्तक कमला की ठोड़ी पकड़ ऊपर को उठाते हुये) कितनी प्यारी लावण्यमयी लग रही है मेरी बिटिया!

अमानसिंह- तुम श्रृंगार करो और सुन्दर न लगे, ऐसा कहीं हो सकता है?

यशोदा- नहीं महाराज! आपके कारण आज मुझे यह पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है।

अमानसिंह- तुमने मेरी योजना में सहयोग देकर मुझे धन्य कर दिया महारानी!

यशोदा- यह तो अर्द्धांगिनी का कर्त्तव्य है स्वामी! जाऊँ इसे भोजन करा दूँ। दुश्चिंता ने इसे भोजन भी न करने दिया होगा।

अमानसिंह- ले जाओ, निश्चित ही वह भूखी होगी। देखो बिटिया कमला! अब वह गीत न गाना कभी। हम वृद्ध हो गये हैं, जीवन का विश्वास नहीं। अब कोई तुम्हें बिंदिया नहीं देगा।........... महारानी अतिथियों के भोज का प्रबंध भी सुन्दर होना चाहिये।

यशोदा- यथोचित व्यवस्था हो जायेगी महाराज!

(पटाक्षेप)

पुनः वही दृश्य

समय- संध्याकाल

(महाराज अमानसिंह रुग्ण हैं। वे शैया पर पड़े हैं। महारानी यशोदा उनके निकट बैठी हैं। महाराज की अस्वस्थता से वे उद्विग्न हैं)

यशोदा- इस औषधि से भी आपकी पीड़ा कम नहीं हुई महाराज!

अमानसिंह– महारानी ! वृद्धावस्था में औषधि प्रभाव–हीन हो जाती है। औषधि भक्षण कर केवल मन को बहलाया जाता है।

यशोदा– ऐसा न कहें स्वामी ! आप शीघ्र ही आरोग्य–लाभ करेंगे।

अमानसिंह– इससे तुम्हें तृप्ति मिलती है तो हम उसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। फिर भी हमारी सम्मति है कि हमें अपनी कल्पना से ऊपर उठकर यथार्थता के दर्शन अवश्य करना चाहिए ताकि कोई भी घटना अप्रत्याशित रूप से मन को व्यथित न कर सके।

यशोदा– महाराज ! सत्य तो यह है कि वृद्धावस्था स्वयं अपने आप में एक रोग है ।.....

अमानसिंह– और जिसका कोई उपचार नहीं। (प्रतिहार का प्रवेश)

प्रतिहार– महाराज ! आपका आदेश पाकर अमात्य एवं कोषाध्यक्ष पधारे हैं। आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।

अमानसिंह– भेज दो उन्हें। (प्रतिहार के चले जाने पर) महारानी ! हम एकांत चाहते हैं।

(महारानी जाती हैं एवं अमात्य सूरजसिंह और कोषाध्यक्ष संतोषीलाल प्रवेश कर अभिवादन करते हैं)

सूरजसिंह– स्वास्थ्य कैसा है महाराज !

अमानसिंह– जीवन की संध्या है सूरजसिंह! कब सूर्य अस्त हो जाये, कह नहीं सकते ?

संतोषीलाल– ऐसा अशुभ न बोलें महाराज ! आपको हमारी भी उम्र लगे।

अमानसिंह– (मुस्कुराकर) यह क्या संभव है संतोषी लाल ! समय

आने के पश्चात् एक क्षण भी कोई रुक सकता है ?

सूरजसिंह– समस्त प्रजा आपकी मंगल–कामना कर रही है महाराज ! आप दीर्घायु हैं। शीघ्र ही स्वास्थ्य–लाभ करेंगे।

अमानसिंह– मंत्रिवर ! सत्य को अस्वीकार करना व्यर्थ है। अब चला–चली की बेला है। जो आया है, वह जायेगा ही; यह सृष्टि का सनातन नियम है। अब हम युवराज को राज्यपद पर अभिषिक्त कर राज्य–कार्य से मुक्त हो जाना चाहते हैं।

सूरजसिंह– शुभ संकल्प है महाभाग !

संतोषीलाल– कौन–सी तिथि निश्चित की है महाराज !

अमानसिंह– यह सब आपके प्रबंध पर निर्भर है संतोषीलाल !

संतोषीलाल– और कोई सेवा महाराज ?

अमानसिंह– आपसे एक महत्त्वपूर्ण बात कहनी है।

सूरजसिंह– सहर्ष कहें अन्नदाता !

अमानसिंह– अभी तक आपसे मंत्रणा कर हम राज्य–कार्य का संचालन करते थे किन्तु सिंहासन छोड़ने के पूर्व स्वेच्छा से आप दोनों को अपनी सम्माति देना अनिवार्य समझते हैं।

संतोषलाल– आपकी सम्मति हमें आदरास्पद होगी श्रीमान् !

अमानसिंह– ध्यान देकर सुनें। **हमारे राज्य में मोहरें घुन गई, स्वर्ण–रजत की सिल्लियाँ सूख गई, हीरा–मोती सड़ गये, जो चील कौए ले उड़े।** भविष्य में ऐसा

नहीं हो सकेगा। हमें ज्ञात है भावी नरेश का स्वभाव, उसकी वृत्ति हमसे विपरीत है।

(अमात्य सूरजसिंह एवं कोषाध्यक्ष संतोषीलाल दोनों स्वयं को अपराधी अनुभव करते हुए परस्पर एक दूसरे को देख आँखें झुका लेते हैं।

सूरजसिंह- (विचलित स्वर में)! महाराज हम अपराधी हैं।

संतोषीलाल- हमें दण्ड दें महाराज!

अमानसिंह- दण्ड की क्या आवश्यकता? हम आपको केवल सावधान करना चाहते हैं। हम ये नहीं चाहते हैं कि हमारे सम्माननीय सदस्यों का अपमान हमारे ही उत्तराधिकारी करें।

सूरजसिंह- आपकी उदारता के हम चिरऋणी रहेंगे महाभाग!

अमानसिंह- इस मंत्रणा को गुप्त रखेंगे आप।

संतोषीलाल- जी, इसमें हमारा ही हित है। हम बार-बार आपसे क्षमा याचना करते हैं महाराज!

अमानसिंह- आप इस बात को सर्वथा भुला दें तथा अभिषेक-समारोह के आयोजन का प्रबंध करें।

सूरजसिंह- जी महाराज!

प्रतिहार- (प्रवेश कर) महाराज! राजवैद्य उपस्थित हुये हैं।

अमानसिंह- ससम्मान ले आओ एवं महारानी को भी सन्देश दे दो।

प्रतिहार- जी महाराज।

देखे हैं सपने अम्बर के...

धरती पर सोये, पर हमने, देखे हैं सपने अम्बर के!

सुन्दर काँच खिलौने जैसा, नूतन तन अभिराम मिल गया,
खिली वृन्त पर कलिका-सा फिर, चञ्चल मन अविराम खिल गया।
चूर-चूर हो गया खिलौना, रोई पंखुरियाँ झर-झर के।।

सजे श्वेत मल भरे कलश पर, रीझे हम, बेदाम बिक गये,
भेद न जाना नयन मूँद कर, सुधा समझ विषपान कर गये।
हम अखण्ड को खण्ड-खण्ड कर, हर्ष मनाते हैं जी भर के।।

तम के घर उजियारा बंदी, धर्म घिर गया है अधर्म से,
क्रियाकाण्ड का सर्प डस गया, हम अनबूझे रहे मर्म से।
ज्यों शव शृङ्गार करें, पर प्राण न फूँक सकें मर-मर के।।

सपनों से हट हम यथार्थ में पढ़लें जीवन की परिभाषा,
स्व को स्व से जोड़ चलें हम, छोड़ चले जग की अभिलाषा।
क्यों हम प्यासे रहें बैठ तट शीतल मधुर स्वच्छ सरवर के।।

छलना

प्रभु! तुम्हारी अर्चना में आज छलना पल रही है।। टेक।।

मुस्कुराते अधर, मन में आग ईर्ष्या की छुपाये,
अग्निकण बरसा रहे हैं शान्ति की ले ले दुआयें।
बढ़ रहा अज्ञान भीषण, घिर रहा प्रतिपल अँधेरा,
आज हम से दूर जाता हर पलक झिलमिल सबेरा।।
बुझ रहा है ज्ञान-दीपक, शान्ति-बाती जल रही है।। प्रभु.।।

जो चुने थे अर्चना के सुमन सब मुरझा गये हैं,
मैं अकिंचन, अश्रु सूखे, नयन अब पथरा गये हैं।
टूटते हैं स्वर, प्रकम्पित हो रहे हैं अधर मेरे,
विकल मानवता सिसकती है तुम्हारी बाट हेरे।।
विश्व एक कुटुम्ब, क्षण-क्षण भावनाएँ गल रही हैं।। प्रभु.।।

प्यार की भाषा पुरानी, क्षीण, जर्जर हो गई है,
और मानव की सरलता कहाँ जाने खो गई है।
नाव है मँझधार में, तूफान हिंसा के प्रबलतम,
धैर्य की पतवार टूटी, भँवर भीषण है निकटतम।।
आग पानी में लगी छूती गगन लौ जल रही है।। प्रभु.।।

अर्थ की नगरी यहाँ, नित स्वार्थ तृष्णा फल रही है,
सत्य की अर्थी निरन्तर आज धू-धू जल रही है।
बिक रहा है कौड़ियों के मोल यह अनमोल जीवन,
इस लुटेरे हाट में लुट जायेगा, मन! कर नियन्त्रण।।
अर्चना, अभ्यर्थनाएँ व्यर्थ ही सब चल रही हैं।। प्रभु.।।

रजि.-2/09-10/B-113(1)

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

अमायन, जिला-भिण्ड (म.प्र.) -४७७२२७

(रजि. AAJTS769D/03/15-16T-268/80G आयकर अधिनियम १९७१ की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट की पात्रता है)

द्वारा संचालित गतिविधियाँ -

१. श्री वर्द्धमान दि. जैन विद्यार्थी गृह

२. श्री वर्द्धमान दि. जैन कन्या विद्यार्थी गृह

३. वर्द्धमान औषधालय- अमायन/मौ/ग्वालियर/खड़ेरी

४. वर्द्धमान पुस्तकालय

५. श्री वर्द्धमान श्रुत प्रभावना केन्द्र, ग्वालियर

६. सत्-साहित्य प्रकाशन

७. मेधावी/निर्धन छात्र एवं छात्राओं को छात्रवृत्ति

८. श्री वर्द्धमान प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान

(आयुर्वेदिक एवं एक्यूप्रेशर)

(NDDY चिकित्सक एवं सहायक चिकित्सक - डिप्लोमा कोर्स)

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.) द्वारा प्रकाशित, उपलब्ध सत्साहित्य-
(श्री ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' विरचित)

क्र.	नाम	न्यौछावर राशि
1.	अमृत वचन	50/-
2.	स्वानुभव पत्रावलि	50/-
3.	जीवन पथ दर्शन	30/-
4.	जीवन पथ दर्शन (संक्षिप्त)	20/-
5.	लघु बोध कथाएँ	30/-
6.	जिनवर स्तवन	30/-
7.	स्वरूप-स्मरण	40/-
8.	जिन-भक्ति सिंधु	50/-
9.	रत्नत्रय विधान	10/-
10.	चौंसठ ऋद्धि विधान	10/-
11.	रत्नत्रय-चौंसठ ऋद्धि विधान	10/-
12.	नीति वचन	20/-
13.	उन्नति	30/-
14.	प्रेरणा	30/-
15.	बाल भावना	05/-
16.	सहज पाठ संग्रह	50/-
17.	वैराग्य पाठ संग्रह (सजिल्द)	40/-
18.	दृष्टांत-सिद्धांत	40/-
19.	श्री पंच बालयति तीर्थंकर मण्डल विधान	20/-
20.	श्री चौबीस तीर्थंकर मण्डल विधान	30/-
	अन्य -	
21.	अनुबंध (श्रीमती रूपवती 'किरण')	30/-
22.	पावन मन (श्रीमती रूपवती 'किरण')	30/-
23.	जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (श्रीमती रूपवती 'किरण')	30/-
24.	बसंततिलका (श्रीमती रूपवती 'किरण')	25/-
25.	पूर्णिमा (श्री भगवत् जैन)	30/-
26.	अमर विश्वास (कहानी संग्रह)	30/-
27.	विराग सरिता (श्रीमद् राजचंद्रजी के वचनामृत)	30/-

सम्पर्क सूत्र- अमायन : प्रवीण भैया-9926316216

भिण्ड : अनिल जैन-9926485686, ग्वालियर : राजेन्द्र जैन-9826254741

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.) द्वारा संचालित गतिविधियाँ -

ग्वालियर (म.प्र.) :
श्री जी चैत्यालय/औषधालय/ प्रयास/श्रुत प्रभावना केन्द्र

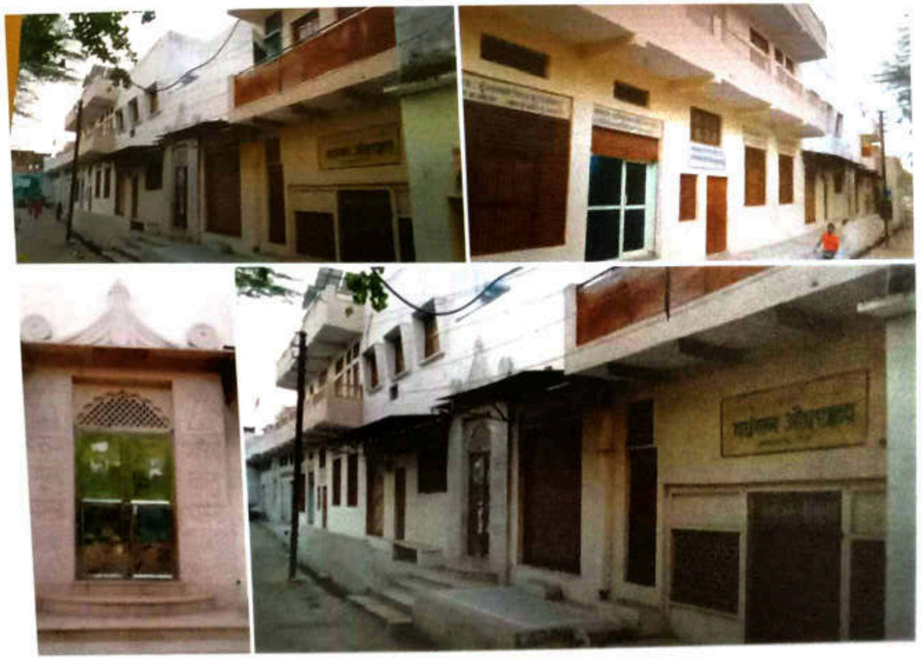

अमायन (भिण्ड, म.प्र.) :
मुमुक्षु श्राविका सदन/छात्रावास/ विद्यालय/औषधालय